

खण्ड 2  
पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद



---

## इकाई 8 साधनपाद में प्रतिपादित अष्टांग योग का परिचय

---

### इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अष्टांग योग

8.2.1 यम

8.2.1.1 अहिंसा

8.2.1.2 सत्य

8.2.1.3 अस्तेय

8.2.1.4 ब्रह्मचर्य

8.2.1.5 अपरिग्रह

8.2.2 नियम

8.2.2.1 शौच

8.2.2.2 सन्तोष

8.2.2.3 तप

8.2.2.4 स्वाध्याय

8.2.2.5 ईश्वर प्रणिधान

8.2.3 आसन

8.2.4 प्राणायाम

8.2.5 प्रत्याहार

8.2.6 धारणा

8.2.7 ध्यान

8.2.7 समाधि

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.6 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### 8.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अष्टांग योग 'यम' के अर्न्तगत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के बारे में जान सकेंगे।
- अष्टांग योग 'नियम' के अर्न्तगत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान के बारे में जान सकेंगे।
- अष्टांग योग आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार के बारे में जान सकेंगे।
- अष्टांग योग धारणा, ध्यान, समाधि के बारे में जान सकेंगे।

- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

## 8.1 प्रस्तावना

जब तक चित्त राग-द्वेषादि मल और विक्षेपों से भरा हुआ है, जब तक तत्त्व-ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। तत्त्व ज्ञान की उपलब्धि के लिये हृदय का शुद्ध और बुद्धि का निर्मल होना आवश्यक है। योगाङ्गों के अनुष्ठान से विवेकख्याति की उपलब्धि तथा चित्त की अशुद्धि का अपसारण होता है। इस प्रकार योगाङ्ग विवेक ख्याति की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है—‘योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।’ (योगसूत्र 2/28) चित्त के परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता-पवित्रता की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है। चित्त के परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता पवित्रता के लिये योग आठ प्रकार के साधन बतलाता है, जिन्हें अष्टांग योग के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार **इकाई-8 अष्टांग योग** में अष्टांग योग ‘यम’ के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा ‘नियम’ के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार एवं धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन किया जायेगा।

## 8.2 अष्टांग योग

अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच योगाङ्ग तो एक प्रकार से धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए तैयारी मात्र है। अतः इन पाँच योगाङ्गों को बहिरंग साधन और धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग साधन कहा जाता है। यहाँ सबसे पहले यह बतला देना आवश्यक है कि योग के इन आठ अंगों के सन्दर्भ में आया समाधि पद ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ का वाचक है। सम्प्रज्ञात समाधि अंग और असम्प्रज्ञात समाधि अंगी है।

### 8.2.1 यम

यम के अन्तर्गत बताया गया है कि ‘क्या नहीं करो’ यम योग का प्रथम अंग है। कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयमों को यम कहते हैं—‘अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा ययाः’ अर्थात् यम के भी पाँच अंग होते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

#### 8.2.1.1 अहिंसा

किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है अर्थात् मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कभी किसी प्रकार किञ्चिन्मात्र भी दुःख न देना ‘अहिंसा’ है। परदोष दर्शन का सर्वथा त्याग भी इसी के अन्तर्गत है। इस प्रकार ‘अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौ वैरत्यागः’ (पातञ्जलयोगदर्शन 2/35) अर्थात् अहिंसा से प्रतिष्ठित हो जाने पर उस योगी से बैर भाव छूट जाता है।

#### 8.2.1.2 सत्य

किसी से किसी प्रकार का मिथ्या भाषण न करना सत्य है। वस्तुतः वाणी और मन का यथार्थ होना सत्य है। इन्द्रिय और मन से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर या अनुमान करके जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा का वैसा ही भाव प्रकट करने के लिये प्रिय और हितकर तथा दूसरे को उद्वेग उत्पन्न न करने वाले जो वचन बोले जाते हैं,

उनका नाम 'सत्य' है। इसी प्रकार कपट और छल रहित व्यवहार का नाम सत्य व्यवहार समझना चाहिये। इस प्रकार 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' (पातजलयोगदर्शन 2/36) अर्थात् सत्य से प्रतिष्ठित हो जाने पर उस साधक में क्रियाओं और उनके फलों की आश्रयता आ जाती है।

### 8.2.1.3 अस्तेय

दूसरे की वस्तु का अपहरण न करना अथवा उसकी इच्छा भी न करना अस्तेय है। दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना, छल से या अन्य किसी उपाय से अन्याय पूर्वक अपना बना लेना 'स्तेय' (चोरी) है, इसमें सरकार की टैक्स की चोरी और घूस खोरी भी सम्मिलित है, इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम 'अस्तेय' है। इस प्रकार 'अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्' (पातजलयोगदर्शन 2/37) अर्थात् अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर सभी रत्नों की उपस्थिति हो जाती है।

### 8.2.1.4 ब्रह्मचर्य

सभी इन्द्रियों के निरोध पूर्वक गुह्य इन्द्रिय के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है। मन, वाणी और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनों का सब अवस्थाओं में सदा त्याग करके सब प्रकार से वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य' है। अतः साधक को चाहिये कि न तो काम दीपन करने वाले पदार्थों का सेवन करे, न ऐसे दृश्यों को देखे, न ऐसी बातों को सुने, न ऐसे साहित्य को पढ़े और न ऐसे विचारों को ही मन में लावे तथा स्त्रियों का और स्त्री आसक्त पुरुषों का संग भी ब्रह्मचर्य में बाधक है, अतः ऐसे संग से सदा सावधानी के साथ अलग रहे। इस प्रकार 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' (पातजलयोगदर्शन 2/36) अर्थात् ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर वीर्य सामर्थ्य का लाभ होता है।

### 8.2.1.5 अपरिग्रह

अपने स्वार्थ के लिये ममता पूर्वक धन, सम्पत्ति और भोग-सामग्री का संचय करना 'परिग्रह' है, इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है। विषयों में अर्जन-दोष, क्षय-दोष, संग-दोष तथा हिंसा-दोष के दिखलाई पड़ने से उन विषयों का जो परित्याग है उसे 'अपरिग्रह' कहते हैं। सामान्यतया अपरिग्रह का अर्थ होता है-लोभ के वशीभूत होकर अनावश्यक वस्तु का ग्रहण न करना। इस प्रकार 'अपरिग्रहस्थैर्यं जन्मकथन्तासंबोधः' (पातजलयोगदर्शन 2/39) अर्थात् अपरिग्रह स्थिर होने पर भूत, वर्तमान और भविष्य के जन्मों तथा उनके प्रकार का संज्ञान होता है।

ये यम सार्वभौम महाव्रत कहे जाते हैं-'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतम्' इनका पालन सभी जाति, सभी देश, सभी काल और सभी समय में करना आवश्यक है। मन को सबल बनाने के लिये योग ने इन पाँच प्रकार के यमों का निर्धारण किया है। इनके सेवन से मानव अनुचित प्रवृत्तियों से अपने आपको बचा लेता है।

## 8.2.2 नियम

नियम योग का दूसरा अंग है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि 'क्या करो।' नियम का सामान्य अर्थ है सदाचार का पालन। इसके भी पाँच अंग हैं। वे इस प्रकार हैं-  
**शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।** (पातजलयोगदर्शन 2/32)

### 8.2.2.1 शौच

शौच का अर्थ है—बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि। मिट्टी, जल तथा गोबर आदि से शरीर को धोकर स्नान करने से और हित, मित तथा लघु भोजन करके उदर को प्रक्षालित करने से शरीर पवित्र होता है। ये दोनों ही 'बाह्य शौच' कहे जाते हैं। मैत्री, करुणा और मुदितादि के द्वारा चित्त के मद, मान एवं असूया आदि मलों का प्रक्षालन आभ्यन्तर शौच कहा जाता है।

### 8.2.2.2 सन्तोष

जितने साधन से शरीर धारण किया जा सके उससे अधिक को ग्रहण करने की इच्छा के अभाव का नाम है—सन्तोष। कहने का भाव यह है कि भाग्यवशात् प्राप्त शरीर धारणोपयोगी पदार्थ से अधिक पदार्थ विषयक इच्छारूप चित्त वृत्ति के अभाव का नाम सन्तोष है।

### 8.2.2.3 तप

भूख—प्यास, शीत—उष्ण, सर्दी—गर्मी, खड़े ही रहना तथा बैठे ही रहना आदि द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' बतलाया गया है।

### 8.2.2.4 स्वाध्याय

मोक्ष के उपयोगी शास्त्रों का नियमित अध्ययन अथवा प्रणव का जप स्वाध्याय कहा गया है। कहने का आशय यह है कि ज्ञानी पुरुषों के उपदेशों का अध्ययन ही स्वाध्याय है।

### 8.2.2.5 ईश्वर प्रणिधान

परम गुरु परमात्मा में सभी कर्मों को अर्पित करना ईश्वर प्रणिधान कहा गया है।

### 8.2.3 आसन

पतञ्जलि ने आसन को परिभाषित करते हुए कहा है कि—'स्थिरसुखमासनम्' अर्थात् निश्चय सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। हठयोग में आसनों के बहुत भेद बतलाये गये हैं, परन्तु यहाँ सूत्रकार ने उनका वर्णन नहीं करके बैठने का तरीका साधक की इच्छा पर ही छोड़ दिया है। भाव यह है कि जो साधक अपनी योग्यता के अनुसार जिस रीति से बिना हिले—डुले स्थिर भाव से सुखपूर्वक बिना किसी प्रकार की पीड़ा के बहुत समय तक बैठ सके वही आसन उसके लिये उपयुक्त है। इसके सिवा, जिस पर बैठकर साधन किया जाता है, उसका नाम भी आसन है, अतः वह भी स्थिर और सुखपूर्वक बैठने लायक होना चाहिये। इस प्रकार शरीर को सुख देने वाले चित्त को स्थिर रखने वाले बैठने के जो प्रकार हैं, उन्हें आसन कहते हैं। आसनों में पद्मासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन तथा दण्डासन आदि विविध प्रकार के आसन हैं। वैसे 84 आसन प्रसिद्ध हैं। आसनों के अभ्यास से शरीर और मन दोनों ही स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं।

### 8.2.4 प्राणायाम

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।' अर्थात् प्राणायाम योग का चौथा अंग है। प्राणायाम का अर्थ है—श्वास का नियन्त्रण—प्राण=श्वास—वायु, आयाम=नियन्त्रण। इस क्रिया के तीन अंग होते हैं—

1. **पूरक**—पूरक का अर्थ है भीतर खींचकर भरना।
2. **कुम्भक**—कुम्भक का अर्थ है भीतर खींचे गये श्वास को रोक कर रखना।
3. **रेचक**—रेचक का अर्थ है भीतर रोके गये श्वास को नियमित विधि से बाहर निकालना।

यहाँ एक बात बतला देना असंगत न होगा कि मनमानी धुँआधार रीति से श्वास को खींचना, रोकना और छोड़ना, यह प्राणायाम की सही विधि नहीं है। विकृत प्राणायाम के अभ्यास से शरीर एवं मन रुग्ण होते हैं। अतः इसकी विधियाँ योग्य गुरु के निर्देशन में ही सीखनी चाहिए। सही—सही, ठीक—ठीक रीति से, प्राणायाम के सतत नियमित अभ्यास से मन और शरीर दोनों ही सबल एवं तेजस्वी बनते हैं। दोनों दृढ़ तथा एकाग्र होते हैं। श्वास की गति के नियमित एवं नियन्त्रित होने पर मन चंचलता का परित्याग कर नियन्त्रित हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से योगी बहुत देर तक अपनी श्वास रोक सकता है और समाधि की अवधि बढ़ा सकता है। प्राणायाम की महत्ता को स्वीकार करते हुए आज का चिकित्सा—विज्ञान भी यह कहता है कि इसके नियमित अभ्यास से हृदय पुष्ट और बलिष्ठ होता है।

### 8.2.5 प्रत्याहार

‘स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः’ अर्थात् अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना है, वह प्रत्याहार है। अर्थात् प्रत्याहार का आशय है कि इन्द्रियों को अपने—अपने बाह्य विषयों से हटाकर उन्हें मन के वश में रखना। इन्द्रियों का व्यापार तब होता है जब चित्त भी व्यापाररत होता है। प्राणायाम के सतत अभ्यास से जब चित्त का व्यापार बन्द हो जाता है तब इन्द्रियाँ भी व्यापार से विरत हो जाती हैं। इन्द्रियों का सम्बन्ध अपने—अपने मोहनीय, रंजनीय तथा कोपनीय शब्दादि विषयों से समाप्त हो जाता है। वे चित्त में ही विलीन सी हो जाती हैं। प्रत्याहार का विच्छेद लभ्य अर्थ है प्रति—प्रतिकूल, आहार—वृत्ति अर्थात् बहिर्मुखी इन्द्रियाँ जब बाह्य विषयों से हट कर अन्तर्मुखी (भीतर वृत्ति वाली) हो जाती हैं, तब उनका प्रत्याहार सम्पन्न होता है।

### 8.2.6 धारणा

‘देशबन्धश्चित्तस्य धारणा’ (योगसूत्र 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना ही धारणा है। कहने का आशय यह है कि चित्त का, नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक में स्थित प्रकाश पुंज, नासिका तथा जिह्वा के अग्रभाग आदि स्थानों में अथवा प्रतिमा आदि बाह्य विषयों में, स्थिर होकर दृढ़ता के साथ लगना अर्थात् बँधना ही धारणा है। धारणा योग की असली कुंजी है।

### 8.2.7 ध्यान

‘तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्’ (योगसूत्र 3/2) अर्थात् उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। कहने का आशय यह है कि उन नाभिचक्र आदि स्थानों में जो ज्ञानवृत्ति अथवा ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है वह ध्यान कहा जाता है। वस्तुतः ध्यान का अर्थ है—ध्येय विषय का सतत मनन। अर्थात् उसी विषय को लेकर विचार का बिना व्यवधान के प्रवाह। यद्यपि योगसूत्र में सूत्रकार एवं भाष्यकार दोनों ने यह लिखा है कि देश विशेष में स्थित ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। यही बात पुराणों से भी समर्थित होती है।

### 8.2.7 समाधि

‘तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः’ (योगसूत्र 3/2) अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वही ध्यान ही समाधि हो जाता है। कहने का आशय यह है कि वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूप मात्र का प्रकाशक होते हुए अपने अर्थात् स्वयं ध्यान के स्वरूप से शून्य सा हो जाता है तब समाधि कहलाता है। ध्यान की अवस्था में तीन बातों की स्थिति होती है और उन्हीं का भान भी होता है। वे बातें हैं—ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन्हें ही क्रमशः चित्त, चित्तवृत्ति तथा विषय कहते हैं। जब ध्यान का अभ्यास करते-करते वह ध्यान अपने स्वरूप का त्याग सा करके ध्येय के ही रूप को धारण कर लेता है, ध्येय स्वरूप ही बन जाता है, तब उसे समाधि कहते हैं। उस समय ध्यान उसी प्रकार से ध्येय विषय के रूप को धारण कर लेता है यद्यपि उस अवस्था में भी जल में लवण की स्थिति रहती है, किन्तु जल के रूप में मिल कर रहती है। इसी प्रकार समाधि के रूप को धारण कर लेने पर भी ध्यान की सत्ता रहती ही है, किन्तु ध्यान रूप से न भासित होकर ध्येय रूप से भासित होती है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि समाधि की अवस्था में ध्यान विद्यमान रहता हुआ भी स्वरूपतः प्रतीत न होने से स्वरूप शून्य सा लगता है। यही सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि का मूल अन्तर है।

यहाँ एक बात का ध्यान रखना है कि अभी ऊपर जिस समाधि का वर्णन किया गया है। वह चित्त वृत्तियों के निरोधरूप योग का साधन है—‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अन्तरंग साधन हैं। अन्तरंग साधन होने से इन तीनों का विषय एक ही होना चाहिए अर्थात् जिस विषय की धारणा हो उसी विषय का ध्यान हो और फिर उसी विषय को लेकर समाधि भी होनी चाहिए। ये तीनों ही मिल कर संयम कहलाते हैं—‘त्रयमेकत्रसंयमः’ (योगसूत्र 3/4) यह संयम योग साधना के साधक के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। समाधि की दो अवस्थाएँ हैं—सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। इनमें से प्रथम आरंभिक अवस्था है और दूसरी अंतिम अवस्था है।

1. **सम्प्रज्ञात समाधि**—एकाग्र अवस्था को संप्रज्ञात योग कहते हैं। इसमें अभीष्ट विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है। इस समाधि के चार सोपान हैं—

- **सवितर्क समाधि**—इस अवस्था में किसी स्थूल विषय (जैसे नाक का अग्रभाग इत्यादि) पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।
- **सविचार समाधि**—इस अवस्था में सूक्ष्म विषय या तन्मात्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। स्थूल विषय के ज्ञान के बाद सूक्ष्म विषय पर चित्त लगाना पड़ता है।
- **सानंद समाधि**—सूक्ष्म वस्तुओं के बाद सूक्ष्मतर वस्तुओं (जैसे इन्द्रियों) पर ध्यान लगाना पड़ता है। यहाँ एकादश इन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदन सुखदायक होते हैं, इसलिए इस अवस्था को सानंद समाधि कहते हैं।
- **सास्मिता समाधि**—यह समाधि की अंतिम एवं पूर्णवस्था है। यहाँ स्थूल या सूक्ष्म विषयों पर ध्यान न देकर चित्त को अहंकार पर ध्यान लगाना पड़ता है। अहंकार ‘अस्मिता’ है। इसीलिए इस समाधि को सास्मिता समाधि कहा जाता है। इस अवस्था में किसी विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।



2. **असम्प्रज्ञात समाधि**—सम्प्रज्ञात समाधि में वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और इस विषय की चेतना भी रहती है। किन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में साधक को किसी विषय की चेतना नहीं रहती। ध्यान का विषय भी लुप्त हो जाता है। यहाँ आत्मा विशुद्ध चैतन्य के रूप में हो जाती है। जब पुरुष अपने को विशुद्ध चेतना समझ लेता है, जब उसे प्रकृति या इसके विकारों से प्रभावित नहीं होना पड़ता। वह सांसारिक बंधनों से पूर्णतया मुक्त होकर मोक्ष या कैवल्य पा लेता है। यहाँ योगी को चरम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो जाती है। इस अवस्था में साधक विवेकज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी प्रकार के बंधनों एवं दुःखों से मुक्त हो जाता है।

#### बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

- I. योग दर्शन के प्रणेता कौन हैं। (पतंजलि/रामानुजाचार्य)
- II. यम कितने हैं। (5/7)
- III. नियम कितने हैं। (6/5)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. सत्य ..... है। (यम/नियम)
- II. स्वाध्याय.....है। (यम/नियम)

#### बोध प्रश्न-2

1. समाधि को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. ध्यान को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

#### अभ्यास प्रश्न 1

1. पतंजलि प्रतिपादित अष्टांग योग को स्पष्ट कीजिए।

### 8.3 सारांश

पतंजलि समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिए विविध सोपानों का वर्णन करते हैं। इन सोपानों को एक-एक कर पार करते हुए साधक योग की अंतिम मंजिल (अर्थात् समाधि) तक पहुँच सकता है। इसके लिए कठिन धैर्य एवं सतत अभ्यास की

आवश्यकता है। योग द्वारा साधक अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। यौगिक चमत्कार दिखाने की उसकी क्षमता अत्यधिक बढ़ जाती है। पतंजलि ने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि योगाभ्यास का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है न कि चमत्कारों का प्रदर्शन। चमत्कारों का प्रदर्शन योगाभ्यास का अनुचित प्रयोग है। अतः योग के चमत्कारों का प्रयोग मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति के लिए ही करना चाहिए। इस प्रकार **इकाई-8 अष्टांग योग** में अष्टांग योग 'यम' के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा 'नियम' के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार एवं धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन किया गया।

---

## 8.4 शब्दावली

---

यम	—	करने योग्य बातें
नियम	—	अनुशासन
शौच	—	पवित्रता
स्वाध्याय	—	अध्ययन करना

---

## 8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियन्ना, मोतीलाल बनारसीदास, 2005।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिंहा, 2013।
- सांख्यदर्शन, डॉ. विनय, डायमण्ड बुक्स, 2008।
- हिन्दी न्याय दर्शन, आचार्य दुण्डिराज शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी, 1999।
- न्याय एवं वैशेषिक दर्शन, श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि, 2002।
- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982

---

## 8.6 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### बोध प्रश्न-1

1. (i) पतंजलि (ii) 05 (iii) 06
2. (i) यम (ii) नियम

1. 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' (योगसूत्र 3/2) अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वही ध्यान ही समाधि हो जाता है। कहने का आशय यह है कि वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूप मात्र का प्रकाशक होते हुए अपने अर्थात् स्वयं ध्यान के स्वरूप से शून्य सा हो जाता है तब समाधि कहलाता है। ध्यान की अवस्था में तीन बातों की स्थिति होती है और उन्हीं का भान भी होता है। वे बातें हैं—ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन्हें ही क्रमशः चित्त, चित्तवृत्ति तथा विषय कहते हैं। जब ध्यान का अभ्यास करते-करते वह ध्यान अपने स्वरूप का त्याग सा करके ध्येय के ही रूप को धारण कर लेता है, ध्येय स्वरूप ही बन जाता है, तब उसे समाधि कहते हैं। उस समय ध्यान उसी प्रकार से ध्येय विषय के रूप को धारण कर लेता है यद्यपि उस अवस्था में भी जल में लवण की स्थिति रहती है, किन्तु जल के रूप में मिल कर रहती है। इसी प्रकार समाधि के रूप को धारण कर लेने पर भी ध्यान की सत्ता रहती ही है, किन्तु ध्यान रूप से न भासित होकर ध्येय रूप से भासित होती है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि समाधि की अवस्था में ध्यान विद्यमान रहता हुआ भी स्वरूपतः प्रतीत न होने से स्वरूप शून्य सा लगता है। यही सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि का मूल अन्तर है।
2. 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (योगसूत्र 3/2) अर्थात् उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। कहने का आशय यह है कि उन नाभिचक्र आदि स्थानों में जो ज्ञानवृत्ति अथवा ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है वह ध्यान कहा जाता है। वस्तुतः ध्यान का अर्थ है—ध्येय विषय का सतत मनन। अर्थात् उसी विषय को लेकर विचार का बिना व्यवधान के प्रवाह। यद्यपि योगसूत्र में सूत्रकार एवं भाष्यकार दोनों ने यह लिखा है कि देश विशेष में स्थित ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। यही बात पुराणों से भी समर्थित होती है।

#### अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

---

## इकाई 9 यम, नियम के अर्थ एवं स्वरूप का विवेचन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 यम
  - 9.2.1 अहिंसा
  - 9.2.2 सत्य
  - 9.2.3 अस्तेय
  - 9.2.4 ब्रह्मचर्य
  - 9.2.5 अपरिग्रह
- 9.3 नियम
  - 9.3.1 शौच
  - 9.3.2 सन्तोष
  - 9.3.3 तप
  - 9.3.4 स्वाध्याय
  - 9.3.5 ईश्वर प्रणिधान
- 9.4 सारांश
- 9.5 शब्दावली
- 9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 9.7 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### 9.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- 'यम' के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के बारे में जान सकेंगे।
- 'नियम' के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 9.1 प्रस्तावना

---

जब तक चित्त राग—द्वेषादि मल और विक्षेपों से भरा हुआ है, जब तक तत्त्व—ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। तत्त्व ज्ञान की उपलब्धि के लिये हृदय का शुद्ध और बुद्धि का निर्मल होना आवश्यक है। योगाङ्गों के अनुष्ठान से विवेकख्याति की उपलब्धि तथा चित्त की अशुद्धि का अपसारण होता है। इस प्रकार योगाङ्ग विवेक ख्याति की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है—'योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।' (योगसूत्र 2/28) चित्त के परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता—पवित्रता की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है। चित्त के

परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता पवित्रता के लिये योग आठ प्रकार के साधन बतलाता है, जिन्हें अष्टांग योग के नाम से भी जाना जाता है। अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच योगाङ्ग तो एक प्रकार से धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए तैयारी मात्र हैं। अतः इन पाँच योगाङ्गों को बहिरंग साधन और धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग साधन कहा जाता है। यहाँ सबसे पहले यह बतला देना आवश्यक है कि योग के इन आठ अंगों के सन्दर्भ में आया समाधि पद 'सम्प्रज्ञात समाधि' का वाचक है। सम्प्रज्ञात समाधि अंग और असम्प्रज्ञात समाधि अंगी है। इस प्रकार **इकाई-09 यम, नियम के अर्थ एवं स्वरूप का विवेचन** में 'यम' के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा 'नियम' के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया जायेगा।

## 9.2 यम

यम योग का प्रथम अंग है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि 'क्या नहीं करो'। कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयमों को यम कहते हैं। 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' अर्थात् यम के भी पाँच अंग अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह होते हैं।

### 9.2.1 अहिंसा

किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है अर्थात् मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कभी किसी प्रकार किंचिन्मात्र भी दुःख न देना 'अहिंसा' है। परदोष दर्शन का सर्वथा त्याग भी इसी के अन्तर्गत है। इस प्रकार 'अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौ वैरत्यागः' (पातजलयोगदर्शन 2/35) अर्थात् अहिंसा से प्रतिष्ठित हो जाने पर उस योगी से बैर भाव छूट जाता है। इस प्रकार सर्वथा सर्वदा सभी प्राणियों के साथ वैरभाव को छोड़कर प्रीति से वर्तना, अहिंसा है। यदि किसी व्यक्ति को चोरी आदि अशुभ कर्म करने पर उसके सुधार के लिये और अन्यो के उपकार के लिये प्रेमपूर्वक उचित दण्ड दिया जाय तो वह अहिंसा है, हिंसा नहीं। माता, पिता आचार्य आदि बालक-बालिकाओं को दोषों से दूर करने के लिये और उनको गुणवान् बनाने के लिये प्रेमपूर्वक उनको उचित दण्ड देते हैं तो वह हिंसा नहीं, अहिंसा है। इसी प्रकार से अहिंसा के विषय में सर्वत्र जानना चाहिये। अहिंसा का पालन करने से व्यक्ति अपने सूक्ष्म दोषों को जानने में और उनको दूर करने में समर्थ हो जाता है।

### 9.2.2 सत्य

किसी से किसी प्रकार का मिथ्या भाषण न करना सत्य है। वस्तुतः वाणी और मन का यथार्थ होना सत्य है। इन्द्रिय और मन से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर या अनुमान करके जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा का वैसा ही भाव प्रकट करने के लिये प्रिय और हितकर तथा दूसरे को उद्वेग उत्पन्न न करने वाले जो वचन बोले जाते हैं, उनका नाम 'सत्य' है। इसी प्रकार कपट और छल रहित व्यवहार का नाम सत्य व्यवहार समझना चाहिये। इस प्रकार 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' (पातजलयोगदर्शन 2/36) अर्थात् सत्य से प्रतिष्ठित हो जाने पर उस साधक में क्रियाओं और उनके फलों की आश्रयता आ जाती है।

### 9.2.3 अस्तेय

दूसरे की वस्तु का अपहरण न करना अथवा उसकी इच्छा भी न करना अस्तेय है। दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना, छल से या अन्य किसी उपाय से अन्याय पूर्वक अपना बना लेना 'स्तेय' (चोरी) है, इसमें सरकार की टैक्स की चोरी और घूस खोरी भी सम्मिलित है, इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम 'अस्तेय' है। इस प्रकार 'अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्' (पातञ्जलयोगदर्शन 2/37) अर्थात् अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर सभी रत्नों की उपस्थिति हो जाती है।

### 9.2.4 ब्रह्मचर्य

सभी इन्द्रियों के निरोध पूर्वक गुह्य इन्द्रिय के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है। मन, वाणी और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनों का सब अवस्थाओं में सदा त्याग करके सब प्रकार से वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य' है। अतः साधक को चाहिये कि न तो काम दीपन करने वाले पदार्थों का सेवन करे, न ऐसे दृश्यों को देखे, न ऐसी बातों को सुने, न ऐसे साहित्य को पढ़े और न ऐसे विचारों को ही मन में लावे तथा स्त्रियों का और स्त्री आसक्त पुरुषों का संग भी ब्रह्मचर्य में बाधक है, अतः ऐसे संग से सदा सावधानी के साथ अलग रहे। इस प्रकार 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' (पातञ्जलयोगदर्शन 2/36) अर्थात् ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर वीर्य सामर्थ्य का लाभ होता है।

### 9.2.5 अपरिग्रह

अपने स्वार्थ के लिये ममता पूर्वक धन, सम्पत्ति और भोग-सामग्री का संचय करना 'परिग्रह' है, इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है। विषयों में अर्जन-दोष, क्षय-दोष, संग-दोष तथा हिंसा-दोष के दिखलाई पड़ने से उन विषयों का जो परित्याग है उसे 'अपरिग्रह' कहते हैं। सामान्यतया अपरिग्रह का अर्थ होता है-लोभ के वशीभूत होकर अनावश्यक वस्तु का ग्रहण न करना। इस प्रकार 'अपरिग्रहस्थैर्यं जन्मकथन्तासंबोधः' (पातञ्जलयोगदर्शन 2/39) अर्थात् अपरिग्रह स्थिर होने पर भूत, वर्तमान और भविष्य के जन्मों तथा उनके प्रकार का संज्ञान होता है।

ये यम सार्वभौम महाव्रत कहे जाते हैं-'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतम्' इनका पालन सभी जाति, सभी देश, सभी काल और सभी समय में करना आवश्यक है। मन को सबल बनाने के लिये योग ने इन पाँच प्रकार के यमों का निर्धारण किया है। इनके सेवन से मानव अनुचित प्रवृत्तियों से अपने आपको बचा लेता है।

## 9.3 नियम

नियम योग का दूसरा अंग है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि 'क्या करो।' नियम का सामान्य अर्थ है सदाचार का पालन। इसके भी पाँच अंग हैं। वे इस प्रकार हैं-शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (पातञ्जलयोगदर्शन 2/32) उनमें से शौच मिट्टी, जल आदि से होने वाला और पवित्र भोजन आदि बाह्य शौच हैं। चित्त के मलों को दूर करना आभ्यन्तर शौच है। 'सन्तोष' अपने पास में विद्यमान साधन से अधिक साधन को ग्रहण करने की अनिच्छा। 'तप' द्वन्द्वों को सहना। और द्वन्द्व भूख प्यास, शीतोष्ण, खड़ा होना बैठना, काष्ठ मौन (लकड़ी के समान मौन) आकार मौन (मुख से कुछ न बोलना) और अनुकूलता के अनुसार व्रत कृच्छ, चान्द्रायण, सान्तपनादि

तप कहलाते हैं। 'स्वाध्याय' मोक्ष (के उपदेश करने वाले) शास्त्रों का अध्ययन और प्रणव (ओम्) का जप। ईश्वरप्रणिधान सब कर्मों को उस परमगुरु (परमेश्वर) में अर्पित करना। शय्या वा आसन पर स्थित अथवा मार्ग पर चलता हुआ आत्मनिष्ठ, वितर्क जाल से रहित, संसार के बीजरूपी अविद्या के क्षय को देखता हुआ नित्यमुक्त, अमृत भोगने वाला होता है। जिसके प्रसंग में यह कहा गया है कि उस (ईश्वरप्रणिधान) से जीवात्मा के स्वरूप का ज्ञान, ईश्वर साक्षात्कार और अन्तरायों का अभाव होता है।

### 9.3.1 शौच

शौच का अर्थ है—बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि। मिट्टी, जल तथा गोबर आदि से शरीर को धोकर स्नान करने से और हित, मित तथा लघु भोजन करके उदर को प्रक्षालित करने से शरीर का शौच शरीर की पवित्र होता है। ये दोनों ही 'बाह्य शौच' कहे जाते हैं। मैत्री, करुणा और मुदितादि के द्वार चित्त के मद, मान एवं असूया आदि मलों का प्रक्षालन आभ्यन्तर शौच कहा जाता है। बाहर की शुद्धि न्यून परिश्रम साध्य है और आन्तरिक शुद्धि अधिक परिश्रम साध्य है। बाहर की शुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि करने में अधिक प्रयत्न करना चाहिये।

शौच का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि— **शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।** अर्थात् जब योगी की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि हो जाती है तब वह अपने शरीर से अनासक्त हो जाता है तथा अन्यो के शरीरों से भी सम्पर्क नहीं रखना चाहता। कहने का आशय है कि अपने शरीर में जुगुप्सा अर्थात् घृणा होने पर शौच का पालन करने वाला, शरीर के दोष को देखने वाला, शरीर में आसक्तहीन यति अर्थात् संयमी होता है। और भी दूसरों से संसर्ग रहित होता है। शरीर के स्वरूप को देखने वाला, अपने शरीर को छोड़ने की इच्छा वाला मिट्टी, जल आदि से धोता हुआ भी शरीर की शुद्धि नहीं देखने वाला, अत्यन्त ही प्रयत्न न करने वाले लोगों के शरीरों के साथ कैसे संसर्ग करे? अर्थात् नहीं करता है।

शौच का दूसरा फल बतलाते हुए कहा है कि— **'सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च'** अर्थात् जब योगी की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि हो जाती है तब बुद्धि की शुद्धि आदि योग्यता प्राप्त होती है। कहने का आशय है कि सत्त्वशुद्धि आदि सिद्धियाँ होती हैं। शुद्धि से बुद्धि की शुद्धि, उससे मन की प्रसन्नता, उससे मन की एकाग्रता, उससे इन्द्रियों पर विजय, उससे बुद्धि सत्त्व को आत्म साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है। ये सिद्धियाँ शुचि विषयक स्थिरता होने पर प्राप्त होती है।

### 9.3.2 सन्तोष

जितने साधन से शरीर धारण किया जा सके उससे अधिक को ग्रहण करने की इच्छा के अभाव का नाम है—सन्तोष। कहने का भाव यह है कि भाग्यवशात् प्राप्त शरीर धारणोपयोगी पदार्थ से अधिक पदार्थ विषयक इच्छारूप चित्त वृत्ति के अभाव का नाम सन्तोष है। सन्तोष का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि ने **'सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः'** अर्थात् पूर्ण सन्तोष का पालन करने वाले योगी को समस्त सांसारिक सुखों से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। क्योंकि कहा गया है कि—

“यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।  
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।”

अर्थात् लोक में जो कामजन्य सुख है और जो महान् स्वर्ग सुख है, ये दोनों सुख तृष्णा के क्षय से होने वाले सुख का सोलहवाँ भाग भी नहीं हो सकते। सन्तोष के पालन करने का यह भी फल है कि विषय भोगों को छोड़कर व्यक्ति योगाभ्यास करता है तो मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष का सुख अनुत्तम सुख है उसके साथ किसी भी सांसारिक सुख की वास्तविक तुलना नहीं हो सकती। सन्तोष का पालन करने से व्यवहार में भी सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति होती है। जब कोई हानिकारक घटना घट जाती है तो सन्तोषी व्यक्ति को दुःख नहीं होता अथवा न्यून दुःख होता है। इसलिये सन्तोष का पालन योग सिद्धि के साथ व्यवहार की सिद्धि के लिए भी उपयोगी है।

### 9.3.3 तप

भूख—प्यास, शीत—उष्ण, सर्दी—गर्मी, खड़े ही रहना तथा बैठे ही रहना आदि द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' बतलाया गया है। धर्माचरण करते हुये हानि—लाभ, सुख—दुःख, मान—अपमान, सर्दी—गर्मी, भूख—प्यास आदि को शान्त चित्त से सहन करना, तप है। जिन उत्तम कार्यों के करने से स्वयं का और अन्यो का दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है उनको करते रहना और न छोड़ना, धर्माचरण है। महर्षि पतंजलि ने तप का फल बतलाते हुए कहा है कि—'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।' अर्थात् तप के अनुष्ठान द्वारा वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न विकार, तमोगुण से उत्पन्न आलस्यादि दोषों के नाश हो जाने से शरीर स्वस्थ, बलवान्, स्वच्छ और स्फूर्तिमान होता है तथा इन्द्रियों में विषयों को दूर से तथा स्पष्ट देखने—सुनने आदि का सामर्थ्य बढ़ जाता है। इस प्रकार आचरण में लाया जाने वाला तप अशुद्धिजनित आवरण रूपी मल को नष्ट करता है। उस आवरण मल के दूर होने से काया की सिद्धि जैसे कि अणिमा आदि हो जाती हैं। उसी प्रकार इन्द्रियों की सिद्धि जैसा कि दूर से, देखना सुनना आदि उत्पन्न होती है।

### 9.3.4 स्वाध्याय

मोक्ष के उपयोगी शास्त्रों का नियमित अध्ययन अथवा प्रणव का जप स्वाध्याय कहा गया है। कहने का आशय यह है कि ज्ञानी पुरुषों के उपदेशों का अध्ययन ही स्वाध्याय है। इस प्रकार वेद और वेदानुकूल मोक्ष के स्वरूप को एवं उसके साधन, बाधकों को बतलाने वाले ग्रन्थों को पढ़ना—पढ़ाना और ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले मन्त्रों एवं प्रणव आदि का अर्थसहित जप करना, स्वाध्याय है।

इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने स्वाध्याय का फल बतलाते हुए कहा है कि—'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' अर्थात् वेदादि मोक्ष शास्त्रों के पठन—पाठन, प्रणव तथा गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ सहित जप से ईश्वर, वैदिक विद्वान्, योगी आदि धार्मिक महापुरुषों के साथ सम्बन्ध हो जाता है तथा उनसे विविध उत्तम कार्यों में सहायता प्राप्त होती है। कहने का आशय यह है कि विद्वान्, वेदमन्त्रार्थों के द्रष्टा, योगसिद्ध—स्वाध्यायशील को प्राप्त होते हैं और उसके कार्य में सहायता देते हैं।

### 9.3.5 ईश्वर प्रणिधान

परम गुरु परमात्मा में सभी कर्मों को अर्पित करना ईश्वर प्रणिधान कहा गया है। इस प्रकार समस्त विद्याओं को देने वाले परम गुरु ईश्वर में समस्त कर्मों को समर्पित कर देना, उसकी भक्ति करना, व्यवहार में उसके आदेशों का पालन करना, शरीर आदि पदार्थों को उसके मानकर धर्माचरण करना, कर्मों का लौकिक फल न चाहना, ईश्वर



साक्षात्कार को ही लक्ष्य बनाकर कार्यों को करना, ईश्वरप्रणिधान है। मोक्षप्राप्ति विशेष साधन है। इसका पहले उल्लेख कर दिया है। ईश्वर प्रणिधान को अच्छे प्रकार से जानकर तदनुसार आचरण करने से ईश्वर सहायता देता है। जिससे शीघ्र ही समाधि की सिद्धि और विघ्नों का निराकरण हो जाता है। योगदर्शनकार ने प्रथम पाद के 28 वें सूत्र ततः प्रत्यक्चेतना.. में ईश्वर प्रणिधान का फल बतलाया है कि इससे ईश्वर एवं जीवात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार और विघ्न तथा उपविघ्नों का नाश होता है। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान का फल बतलाते हुए कहा है कि—“समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्” अर्थात् ईश्वर की भक्ति विशेष तथा समस्त कर्मों को ईश्वरार्पित कर उनका कोई लौकिक फल न चाहने से समाधि की प्राप्ति होती है अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा शरीरादि का यथार्थज्ञान हो जाता है। कहने का आशय यह है कि समस्त क्रियाओं को ईश्वरार्पित करना, उनका लौकिक फल न चाहना, उसकी विशेष भक्ति करना आदि ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर की विशेष भक्ति का अभिप्राय विशेष प्रेम प्रीति है अर्थात् संसार के समस्त पदार्थों से अधिक ईश्वर से प्रेम करना। ईश्वर प्रणिधान करने से साधक को आनन्द, ज्ञान, बल आदि की प्राप्ति और उसके अज्ञान, दुःख आदि विघ्नों का नाश होता है। व्यासभाष्य में लिखा है कि योगी देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर में अभीष्ट पदार्थों को जान लेता है। इसका तात्पर्य यह है कि तीन पदार्थ अनादि हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। इन तीनों पदार्थों का जानना आवश्यक है। इनके विशुद्ध ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर में ये तीन ही पदार्थ होते हैं। इन तीनों को जानना योगी के लिये अभीष्ट है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान से इनको अच्छे प्रकार से जान लेता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर में जो कुछ भी पदार्थ मात्र हैं योगी उस पदार्थ मात्र को यथावत् जान लेता है अर्थात् ईश्वरवत् सर्वज्ञ हो जाता है।

### बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइयें।

- I. योग दर्शन के प्रणेता कौन है। (पतंजलि/रामानुजाचार्य)
- II. यम कितने है। (5/7)
- III. नियम कितने है। (6/5)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. अहिंसा..... है। (यम/नियम)
- II. अस्तेय..... है। (यम/नियम)
- III. ईश्वर प्रणिधान ..... है। (यम/नियम)
- IV. सन्तोष ..... है। (यम/नियम)

### बोध प्रश्न-2

1. ईश्वर प्रणिधान को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

## 2. तप को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

### अभ्यास प्रश्न 1

1. पतंजलि प्रतिपादित यम-नियम को स्पष्ट कीजिए।

## 9.3 सारांश

पतंजलि समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिए विविध सोपानों का वर्णन करते हैं। इन सोपानों को एक-एक कर पार करते हुए साधक योग की अंतिम मंजिल (अर्थात् समाधि) तक पहुँच सकता है। इसके लिए कठिन धैर्य एवं सतत अभ्यास की आवश्यकता है। योग द्वारा साधक अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। यौगिक चमत्कार दिखाने की उसकी क्षमता अत्यधिक बढ़ जाती है। पतंजलि ने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि योगाभ्यास का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है न कि चमत्कारों का प्रदर्शन। चमत्कारों का प्रदर्शन योगाभ्यास का अनुचित प्रयोग है। अतः योग के चमत्कारों का प्रयोग मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति के लिए ही करना चाहिए। यम निवृत्तिमूलक है तथा नियम प्रवृत्ति मूलक है। इस प्रकार **इकाई-09 यम, नियम के अर्थ एवं स्वरूप का विवेचन** में अष्टांग योग 'यम' के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा 'नियम' के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया गया।

## 9.4 शब्दावली

यम	—	करने योग्य बातें
नियम	—	अनुशासन
शौच	—	पवित्रता
स्वाध्याय	—	अध्ययन करना

## 9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- चार्वाक दर्शन, एस. एस. गौतम, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली।
- चार्वाक दर्शन, आचार्य आनन्द झा, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा सर्वानन्द पाठक, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी।
- बौद्ध दर्शन प्रमुख सिद्धान्त, प्रो. धर्मचन्द्र जैन, डॉ. श्वेता जैन, मिनर्वा पब्लिकेशन।
- बौद्धदर्शन, डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर वाराणसी।
- भारतीय दर्शन डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर वाराणसी।

- जैनदर्शन, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन, श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान।
- प्राचीन भारत, एस. के पाण्डेय, इलाहाबाद प्रकाशन, 2009।
- महान आजीवक, कबीर, रैदास और गोशाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियन्ना, मोतीलाल बनारसीदास।
- भारतीय दर्शन शास्त्र न्याय वैशेषिक डॉ. धमेन्द्रनाथ शास्त्री मोतीलाल बनारसी दास।
- भारतीय दर्शन का इतिहास, डॉ. हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ।
- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलोसफी उमेश मिश्र
- योग विज्ञान, विज्ञानानन्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।
- भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राजकुमारी पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।

---

## 9.6 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### बोध प्रश्न-1

1. (i) पतंजलि (ii) 05 (iii) 05
2. (i) यम (ii) यम (iii) नियम (iv) नियम

### बोध प्रश्न-2

1. परम गुरु परमात्मा में सभी कर्मों को अर्पित करना ईश्वर प्रणिधान कहा गया है। इस प्रकार समस्त विद्याओं को देने वाले परम गुरु ईश्वर में समस्त कर्मों को समर्पित कर देना, उसकी भक्ति करना, व्यवहार में उसके आदेशों का पालन करना, शरीर आदि पदार्थों को उसके मानकर धर्माचरण करना, कर्मों का लौकिक फल न चाहना, ईश्वर साक्षात्कार को ही लक्ष्य बनाकर कार्यों को करना, ईश्वरप्रणिधान है। मोक्षप्राप्ति विशेष साधन है। इसका पहले उल्लेख कर दिया है। ईश्वर प्रणिधान को अच्छे प्रकार से जानकर तदनुसार आचरण करने से ईश्वर सहायता देता है। जिससे शीघ्र ही समाधि की सिद्धि और विघ्नों का निराकरण हो जाता है। योगदर्शनकार ने प्रथम पाद के 28 वें सूत्र ततः प्रत्यक्चेतना.. में ईश्वर प्रणिधान का फल बतलाया है कि इससे ईश्वर एवं जीवात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार और विघ्न तथा उपविघ्नों का नाश होता है। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान का फल बतलाते हुए कहा है कि—“समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्” अर्थात् ईश्वर की भक्ति विशेष तथा समस्त कर्मों को ईश्वरार्पित कर उनका कोई लौकिक फल न चाहने से समाधि की प्राप्ति होती है अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा शरीरादि का यथार्थज्ञान हो जाता है। कहने का आशय यह है कि समस्त क्रियाओं को ईश्वरार्पित करना, उनका लौकिक फल न चाहना, उसकी विशेष भक्ति करना आदि ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर की विशेष भक्ति का अभिप्राय विशेष प्रेम प्रीति है अर्थात् संसार के समस्त पदार्थों से अधिक ईश्वर से प्रेम करना। ईश्वर प्रणिधान करने से साधक को आनन्द, ज्ञान, बल आदि की प्राप्ति और उसके अज्ञान, दुःख आदि विघ्नों का नाश होता है। व्यासभाष्य में लिखा है कि योगी देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर

में अभीष्ट पदार्थों को जान लेता है। इसका तात्पर्य यह है कि तीन पदार्थ अनादि हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। इन तीनों पदार्थों का जानना आवश्यक है। इनके विशुद्ध ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर में ये तीन ही पदार्थ होते हैं। इन तीन को जानना योगी के लिये अभीष्ट है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान से इनको अच्छे प्रकार से जान लेता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर में जो कुछ भी पदार्थ मात्र है योगी उस पदार्थ मात्र को यथावत् जान लेता है अर्थात् ईश्वरवत् सर्वज्ञ हो जाता है।

2. भूख-प्यास, शीत-उष्ण, सर्दी-गर्मी, खड़े ही रहना तथा बैठे ही रहना आदि द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' बतलाया गया है। धर्माचरण करते हुये हानि-लाभ, सुख-दुख, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि को शान्त चित्त से सहन करना, तप है। जिन उत्तम कार्यों के करने से स्वयं का और अन्यो का दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है उनको करते रहना और न छोड़ना, धर्माचरण है। महर्षि पतंजलि ने तप का फल बतलाते हुए कहा है कि—'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।' अर्थात् तप के अनुष्ठान द्वारा वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न विकार, तमोगुण से उत्पन्न आलस्यादि दोषों के नाश हो जाने से शरीर स्वस्थ, बलवान, स्वच्छ और स्फूर्तिमान होता है तथा इन्द्रियों में विषयों को दूर से तथा स्पष्ट देखने-सुनने आदि का सामर्थ्य बढ़ जाता है।

इस प्रकार आचरण में लाया जाने वाला तप अशुद्धिजनित आवरण रूपी मल को नष्ट करता है। उस आवरण मल के दूर होने से काया की सिद्धि जैसे कि अणिमा आदि हो जाती हैं। उसी प्रकार इन्द्रियों की सिद्धि जैसा कि दूर से, देखना सुनना आदि उत्पन्न होती है।

#### अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

---

## इकाई 10 वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 वितर्क (हिंसादि भाव) का स्वरूप
- 10.3 वितर्क निवारण के उपाय
- 10.4 वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा
- 10.5 अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न
- 10.6 सारांश
- 10.7 शब्दावली
- 10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 10.9 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### 10.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- वितर्क (हिंसादि भाव) के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- वितर्क निवारण के उपाय के बारे में जान सकेंगे।
- वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा के बारे में जान सकेंगे।
- अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 10.1 प्रस्तावना

---

यम के अन्तर्गत बताया गया है कि **‘क्या नहीं करो’** यम योग का प्रथम अंग है। कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयमों को यम कहते हैं— **‘अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा ययाः’** अर्थात् यम के भी पाँच अंग होते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इसके अतिरिक्त नियम योग का दूसरा अंग है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि **‘क्या करो।’** नियम का सामान्य अर्थ है सदाचार का पालन। इसके भी पाँच अंग हैं। वे इस प्रकार हैं—**शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।** (पातञ्जलयोगदर्शन 2/32) इस प्रकार यम तथा नियमों के पालन में वितर्कों द्वारा बाधा उपस्थित होती है। उन्हीं का स्वरूप क्या है? तथा वेद इत्यादि में उनके विनाश हेतु क्या नियम है? तथा उन वितर्कों के प्रकार क्या हैं? इसका अध्ययन किया गया है। इस प्रकार **इकाई-10 वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन** के अन्तर्गत वितर्क (हिंसादि भाव) का स्वरूप, उसके निवारण के उपाय तथा वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा एवं अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने के प्रयत्न के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

## 10.2 वितर्क (हिंसादि भाव) का स्वरूप

यम—नियम के विरोधी भाव वितर्क कहलाते हैं। क्योंकि महर्षि पतंजलि ने वितर्कों के बारे में कहा है कि—‘वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्’ अर्थात् (वितर्क—बाधने) वितर्कों से बाधा उपस्थित होने पर (प्रतिपक्ष—भावनम्) विरुद्ध पक्ष का विचार करना चाहिये। कहने का आशय यह है कि यम—नियम के भङ्ग होने से बहुत बड़ी हानि होती है, ऐसा मानकर उन वितर्कों को रोक देना चाहिये। जब योगाभ्यासी के मन में अहिंसादि व्रतों के विरुद्ध हिंसा आदि करने की तीव्र इच्छा हो अर्थात् वह इन अहिंसादि के विरुद्ध हिंसा आदि का आचरण करने का विचार करने लग जाय कि ‘मैं हिंसा करूँगा’ क्योंकि इस व्यक्ति ने मेरी हानि की है। इसी प्रकार सत्य को छोड़कर असत्य आचरण करने का विचार करे कि ‘मैं असत्य बोलूँगा’ ऐसी स्थिति में वह प्रतिपक्ष भावना करे कि काम, क्रोध, लोभ आदि के द्वारा उत्पन्न क्लेशों से सन्तप्त होते हुए मैंने योग की शरण ली है। पुनः उन्हीं भयंकर शत्रुओं को ग्रहण कर रहा हूँ। यह मेरा आचरण कुत्ते के समान है। जैसे कुत्ता मांस आदि को खाकर पेट भर लेता है और उसका वमन करके पुनः उसी को खा लेता है। वैसा ही मैं भी हूँ। ऐसी प्रतिपक्ष भावना को उत्पन्न करें।

## 10.3 वितर्क निवारण के उपाय

अहिंसादि कर्मों को शुभ और हिंसा आदि कर्मों को अशुभ कहा है। इसलिये अशुभ और शुभ कर्मों का निर्णय करना चाहिये। क्योंकि कोई व्यक्ति किसी कर्म को शुभ कहता है तो दूसरा व्यक्ति उसी कर्म को अशुभ कहता है। इस प्रकार से प्रमाणों से शुभाशुभ का निर्णय कर लेना चाहिये। इसके बिना अहिंसादि का पालन और हिंसादि का परित्याग नहीं हो सकता। जो कर्म प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाण से सब के लिये सुखप्रद सिद्ध होता है वह शुभ कर्म है और जो कर्म सबके लिये दुःखप्रद सिद्ध होता है वह अशुभ कर्म है। कहने का आशय यह है कि जिस कार्य को करने का आदेश ईश्वर ने दिया है, वह शुभ कर्म है और जिस कर्म का ईश्वर ने निषेध किया है, वह अशुभ कर्म है। ईश्वर का निर्णय अन्तिम इसलिये माना जाता है कि वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनन्दस्वरूप होने से अन्याय कभी भी नहीं करता। जन्म—जन्मान्तरों के अशुभ संस्कार अत्यन्त बलवान् होते हैं। उनको सूक्ष्मता से जानकर दीर्घकाल पर्यन्त दूर करने का प्रयास करते रहना चाहिये। योगाभ्यासी को अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। यदि वह असावधान रहता है तो तत्काल वितर्क उग्ररूप में उभर आते हैं। प्रथम अपने दोषों को दूर करने का प्रयास अधिक करना चाहिये और दूसरों के दोषों को देखने का अभ्यास न्यून करना चाहिये। काम, क्रोध आदि दोषों से न प्रेम करना चाहिए और न ही उनको जानना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से वे प्रबल होकर आक्रमण करते हैं। समाधि भंग होने पर साधक को वितर्क बाधित करते हैं। यदि साधक सावधान रहता है तो तत्काल ही इनको रोक देता है यदि इनको तत्काल नहीं रोकता तो ये बलवान् हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में इनको दूर करना कठिन होता है। परन्तु योगाभ्यासी को सदा यह जानना चाहिये कि हिंसादि दोषों को मन के द्वारा मैं ही उठाता हूँ। ये स्वयं नहीं उठ सकते। ऐसा जानने से और इनके निराकरण के लिये प्रयत्न करने से इनका उग्ररूप दूर हो सकता है।

यदि साधक यह मानता है कि मन चेतन पदार्थ है, वह ही इन दोषों को उठाता है तो मैं क्या कर सकता हूँ? ऐसी स्थिति में इन दोषों को रोकना कठिन है। असावधानी एवं कुसंस्कारों के कारण व्यक्ति वितर्कों को उठा लेता है और उनको रोकने का प्रयास भी करता है पुनरपि वे नहीं रुकते तो तत्काल ईश्वरोपासना प्रारम्भ कर देनी चाहिये।

उससे इनको हटाने में सफलता मिलेगी। मृत्यु का स्मरण भी वितर्कों को रोकने का एक उपाय है। जैसे कि यह शरीर नाशवान है, मृत्यु के मुख में है, पता नहीं यह किस क्षण समाप्त हो जाए। इस प्रकार मृत्यु को स्मरण करने से काम, क्रोधादि वितर्क रुक जाते हैं।

शब्द प्रमाण भी वितर्कों को रोकने का एक उपाय है। शब्दप्रमाण को स्मरण रखना चाहिये। जब वितर्क सन्तप्त करें तो शब्दप्रमाण को सत्य मानकर वितर्कों को रोक देना चाहिये अर्थात् शब्दप्रमाण में जो बात कही है वह सत्य है और मैं जो मानता हूँ कि विषयभोगों में सुख है, यह असत्य है। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ पर वितर्क उभरते हैं वहाँ-वहाँ शब्द प्रमाण को सत्य मानकर रोक देना चाहिये।

## 10.4 वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा

वेद में वितर्कों के विनाश का उपदेश है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वायतुमुत कोकयातुम्।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(अथर्ववेद, 8/4/22)

अर्थात् हे इन्द्र! तू उल्लू की चाल वाले (रात्रि में घूमने वाले) को, भेड़िये की चाल वाले (क्रोधी) को, कुत्ते की चाल वाले (परस्पर झगड़ने वाले) को, चिड़िया के समान चाल वाले (कामी) को, बाज के समान चाल वाले (आक्रमणकारी) को, गृध्र के समान चाल वाले (लोभी) को पत्थर से पीसने के समान मार डाला। राक्षसों को मार दे।

ईश्वर ने वेद में उपदेश किया है कि सभी प्राणी परस्पर मित्रता का व्यवहार करें। असत्य का परित्याग और सत्य का आचरण करें। उपरोक्त कर्म सबके लिये हितकारी होने से शुभ कर्म हैं। इसके वितरीत अशुभ कर्म है। जब व्यक्ति यह मान लेता है कि ईश्वर शुभ कर्मों का सुख फल और अशुभ कर्मों का दुःख फल अवश्य ही देता है। तब वह अशुभ कर्मों को छोड़कर शुभ कर्मों को अवश्य ही करता है। इस मान्यता के आधार पर हिंसा आदि अशुभ कर्मों का परित्याग करना सरल हो जाता है। जब व्यक्ति हिंसा आदि अशुभ कर्मों को छोड़कर अहिंसा आदि शुभकर्मों को करता है तो उन दोनों प्रकार के कर्मों का परिणाम अनुभव में आता है। उससे अशुभ कर्मों के करने की इच्छा समाप्त होती है और शुभ कर्मों को करने की इच्छा तीव्र हो जाती है। इस प्रकार से वितर्कों को रोकने से सहायता मिलती है।

कर्मों का फल विभिन्न कालों में मिलता है। 1.तत्काल 2.कालान्तर में और 3.जन्मातर में। जन्मातर में मिलने वाला फल प्रत्यक्षरूप में ज्ञात नहीं होता इसलिये इस विषय में संशय होता है। इसका निवारण अनुमान प्रमाण और शब्द प्रमाण से होता है। शब्द प्रमाण में यह कहा है कि अशुभ कर्मों के करने से पशु आदि योनि और शुभ कर्मों के करने से मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है। अनुमान प्रमाण से भी यह बात सिद्ध होती है। मनुष्य के शरीर में जैसे सुख और सुख के साधन हैं वैसे सुख और सुख के साधन पशु, पक्षी आदि योनियों में नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य और पशु आदि योनियाँ भिन्न-भिन्न कर्मों का फल हैं। इस प्रकार से काम, क्रोध, मोह, लोभ, मोह, अहंकार आदि पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

## 10.5 अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न बताते हुए कहा है कि—‘वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्’ अर्थात् यम—नियम के विरोधी भाव ‘वितर्क’ कहलाते हैं जो कि स्वयं किये हुये, दूसरों से करवाये हुये और अनुमोदन किये हुये तीन प्रकार के होते हैं। ये तीनों ही लोभ, क्रोध और मोह कारण वाले होते हैं। मृदु, मध्य और अधिमात्र भेद वाले होते हैं। इनका फल अत्यधिक दुःख और अत्यधिक अज्ञान होता है। इस प्रकार प्रतिपक्ष का विचार कर इनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। कहने का आशय है कि उनमें से हिंसा की गई, करवायी गई और अनुमोदित की गई इस प्रकार त्रिविध है। इनमें से एक—एक फिर तीन प्रकार की है। जैसे कि मांस चर्म के लिए की हुई (हिंसा) अर्थात् लोभ से। इसने अपकार किया (इस भावना से की हुई हिंसा) अर्थात् क्रोध से। इस हिंसा से मुझे धर्म (पुण्य) मिलेगा (ऐसी भावना से की हुयी हिंसा) अर्थात् मोह से। लोभ, क्रोध, मोह भी मृदु (मन्द), मध्य (पहले से अधिक), अधिमात्र (सबसे अधिक) ऐसे तीन—तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार हिंसा के सत्ताईस भेद होते हैं। ये मृदु, मध्य, अधिमात्र फिर तीन—तीन प्रकार के होते हैं जैसे कि मृदुमृदु, मध्यमृदु, तीव्रमृदु। इसी प्रकार मृदुमध्य, मध्यमध्य, तीव्र मध्य और मृदुतीव्र, मध्यतीव्र, अधिमात्रतीव्र। इस प्रकार हिंसा इक्यासी (81) भेद वाली होती है। फिर वह (हिंसा) नियम, विकल्प, समुच्चय भेद से प्राणधारियों के प्रकार अगणित होने के कारण असंख्य भेद वाली होती है। इस प्रकार असत्यादि वितर्कों में भी भेदों को समझ लेना चाहिये।

वे ये वितर्क दुःख, अज्ञानरूपी अनन्त फल वाले होते हैं, इस प्रकार जानकर (वितर्क विरोधी) भावना करनी चाहिए। दुःख और अज्ञानरूपी अनन्त फल है जिन—जिन हिंसादि वितर्कों के ऐसा समझकर वितर्कों के विरुद्ध अहिंसा आदि प्रतिपक्षों की भावना करनी चाहिये इसके पश्चात् वितर्कों के विरुद्ध प्रतिपक्ष भावना के स्वरूप को बतलाते हुए पतञ्जलि कहते हैं कि जैसे और उसी प्रकार हिंसक प्रथम वध्य प्राणी के बल को अवरुद्ध करता है। पश्चात् शस्त्रादि के प्रहार के द्वारा दुःखी करता है। आगे जीवन से भी वियुक्त कर देता है। उस पशु के बल के अवरुद्ध करने से हिंसक के चेतन—अचेतन साधन निर्बल हो जाते हैं। दुःख उत्पन्न करने से हिंसक नरक दुःखदायी पशु, पक्षी आदि, तिर्यक—कीड़े, मकोड़े आदि के तथा मृतक शरीरों में कीट के रूप में जन्म लेकर दुःख अनुभव करता है। जीवन से वियुक्त करने से क्षण—क्षण जीवन की मरणासन्न अवस्था में वर्तमान, मरण को चाँहता हुआ भी दुःखफल निश्चितरूप से भोग्य होने के कारण केवल किसी प्रकार श्वास लेता है और यदि वह हिंसा पुण्य के साथ मिलकर फल देवे, तो उस हिंसक को सुख प्राप्ति होने पर वह हिंसक अल्पायु होता है। इसी प्रकार असत्य आदि में भी यथा सम्भव योजना कर लेनी चाहिए। इस प्रकार हिंसादि वितर्कों का अनुगमन करने वाले अनिष्ट फल को जानता हुआ वितर्कों में मन को न लगावे।

इस प्रकार वितर्कों में से हिंसा के विषय में इस प्रकार से समझना चाहिए कि हिंसा के तीन प्रकार हैं—कृत (स्वयं की हुई), कारित (अन्य से करवाई हुई) और अनुमोदित (किसी के द्वारा की गई हिंसा को उचित मानना)। लोभ, क्रोध और मोह ये हिंसा के तीन कारण हैं। लोभ से कृत, लोभ से कारित, लोभ से अनुमोदित। इसी प्रकार से क्रोध से कृत, क्रोध से कारित, क्रोध से अनुमोदित। मोह से कृत, मोह से कारित, मोह से अनुमोदित। ये 9 भेद हुए। कारणों के स्तर के भेद से हिंसा तीन प्रकार की होती



है—अल्पलोभ से, मध्यम स्तर के लोभ से, अधिक लोभ से की हुई हिंसा। अल्प क्रोध से, मध्यम स्तर के क्रोध से और अधिक क्रोध से की गई हिंसा। अल्प मोह से, मध्यम स्तर के मोह से और अधिक मोह से की गई हिंसा। इस प्रकार से कारणों के भेद से कृत हिंसा के 9 भेद हो जायेंगे। इसी प्रकार कृत तथा कारित हिंसा के 9—9 होने पर 27 प्रकार की हिंसा हुई। पुनः इनके भी मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद होने से हिंसा 81 प्रकार की होती है। हिंसा करने वालों के विचार तीन प्रकार के हो सकते हैं—

- नियम अर्थात् एक ही प्राणी—मछली की हिंसा करूँगा।
- विकल्प—मछली या बकरी, किसी एक की हिंसा करूँगा।
- समुच्चय—जो भी प्राणी मिले, उसकी हिंसा करूँगा।

इस प्रकार असंख्य प्राणी होने के कारण हिंसा असंख्य प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार से असत्य आदि के विषय में भी जानना चाहिये। योगाभ्यासी को इन वितर्कों के विषय में इस प्रकार से विचार करना चाहिये कि यदि मैं इन वितर्कों के अनुसार आचरण करूँगा तो इनका फल, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध योनियों में दीर्घकाल पर्यन्त अज्ञान में रहकर महादुःख भोगना पड़ेगा। इस प्रकार प्रतिपक्ष भावना के विचारों से हिंसादि दुष्ट कर्मों से योगी बच जाता है।

#### बोध प्रश्न—1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।
  - I. वितर्क का अर्थ क्या है। (अहिंसादि भाव / हिंसादि भाव)
  - II. अशुभ कर्म को किस श्रेणी में रखते हैं। (वितर्क / कुतर्क)
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
  - I. वितर्कों को रोकने.....का उपाय है। (मृत्यु का स्मरण / सुखों का स्मरण)
  - II. ....वितर्क भाव है। (काम क्रोधादि / तप)
  - III. वितर्क भाव को रोकने में .....सहायक प्रमाण है। (शब्द प्रमाण / अनुमान प्रमाण)

#### बोध प्रश्न—2

1. वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा किस प्रकार दी गई है।

.....

.....

.....

.....

.....

2. 80 प्रकार के वितर्कों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

## अभ्यास प्रश्न 1

1. वितर्क तथा उससे बचने का उपाय एवं उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

---

### 10.6 सारांश

---

जब कभी संग दोष से या अन्यायपूर्वक किसी के द्वारा सताये जाने पर बदला लेने के लिए या अन्य किसी भी कारण से मन में अहिंसादि के विरोधी भाव बाधा पहुँचाने अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी आदि में प्रवृत्त होकर यम, नियमादि का त्याग कर देने की परिस्थिति उत्पन्न कर दे तो उस समय उन विरोधी विचारों का नाश करने के लिए उन विचारों में दोषदर्शन रूप प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार **इकाई-10 वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन** के अन्तर्गत वितर्क (हिंसादि भाव) का स्वरूप, उसके निवारण के उपाय तथा वेद में वितर्कों के विनाश की शिक्षा एवं अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न के बारे में अध्ययन किया गया।

---

### 10.7 शब्दावली

---

वितर्क	—	हिंसादि भाव
कृत	—	स्वयं की गयी
कारित	—	अन्य से करवाई गई
अनुमोदित	—	किसी के द्वारा की गई हिंसा को उचित मानना
प्रतिपक्ष	—	वितर्क विरोधी भाव (अहिंसादि भाव)
सन्तप्त	—	पीड़ित

---

### 10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीरशास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातञ्जल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पन्त्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

---

### 10.9 बोध प्रश्न/उत्तर

---

#### बोध प्रश्न-1

1. (i) हिंसादि भाव (ii) वितर्क
2. (i) मृत्यु का स्मरण (ii) काम-क्रोधादि भाव (iii) शब्द प्रमाण

1. वेद में वितर्कों के विनाश का उपदेश है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वायतुमुत कोकयातुम् ।  
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।।

(अथर्ववेद, 8/4/22)

अर्थात् हे इन्द्र! तू उल्लू की चाल वाले (रात्रि में घूमने वाले) को, भेड़िये की चाल वाले (क्रोधी) को, कुत्ते की चाल वाले (परस्पर झगड़ने वाले) को, चिड़िया के समान चाल वाले (कामी) को, बाज के समान चाल वाले (आक्रमणकारी) को, गृध्र के समान चाल वाले (लोभी) को पत्थर से पीसने के समान मार डाल। राक्षसों को मार दे।

ईश्वर ने वेद में उपदेश किया है कि सभी प्राणी परस्पर मित्रता का व्यवहार करें। असत्य का परित्याग और सत्य का आचरण करें। उपरोक्त कर्म सबके लिये हितकारी होने से शुभकर्म हैं। इसके वितरीत अशुभ कर्म हैं। जब व्यक्ति यह मान लेता है कि ईश्वर शुभ कर्मों का सुख फल और अशुभ कर्मों का दुःख फल अवश्य ही देता है। तब वह अशुभ कर्मों को छोड़कर शुभ कर्मों को अवश्य ही करता है। इस मान्यता के आधार पर हिंसा आदि अशुभ कर्मों का परित्याग करना सरल हो जाता है। जब व्यक्ति हिंसा आदि अशुभ कर्मों को छोड़कर अहिंसा आदि शुभकर्मों को करता है तो उन दोनों प्रकार के कर्मों का परिणाम अनुभव में आता है। उससे अशुभ कर्मों के करने की इच्छा समाप्त होती है और शुभ कर्मों को करने की इच्छा तीव्र हो जाती है। इस प्रकार से वितर्कों को रोकने से सहायता मिलती है।

कर्मों का फल विभिन्न कालों में मिलता है। 1.तत्काल 2.कालान्तर में और 3. जन्मातर में। जन्मातर में मिलने वाला फल प्रत्यक्षरूप में ज्ञात नहीं होता इसलिये इस विषय में संशय होता है। इसका निवारण अनुमान प्रमाण और शब्द प्रमाण से होता है। शब्द प्रमाण में यह कहा है कि अशुभ कर्मों के करने से पशु आदि योनि और शुभ कर्मों के करने से मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है। अनुमान प्रमाण से भी यह बात सिद्ध होती है। मनुष्य के शरीर में जैसे सुख और सुख के साधन हैं वैसे सुख और सुख के साधन पशु, पक्षी आदि योनियों में नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य और पशु आदि योनियाँ भिन्न-भिन्न कर्मों का फल हैं। इस प्रकार से काम, क्रोध, मोह, लोभ, मोह, अहंकार आदि पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

2. अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न—महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में अस्सी प्रकार के वितर्क एवं उनसे बचने का प्रयत्न बताते हुए कहा है कि—‘वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्’ अर्थात् यम-नियम के विरोधी भाव ‘वितर्क’ कहलाते हैं जो कि स्वयं किये हुये, दूसरों से करवाये हुये और अनुमोदन किये हुये तीन प्रकार के होते हैं। ये तीनों ही लोभ, क्रोध और मोह कारण वाले होते हैं। मृदु, मध्य और अधिमात्र भेद वाले होते हैं। इनका फल अत्यधिक दुःख और अत्यधिक अज्ञान होता है। इस प्रकार प्रतिपक्ष का विचार कर इनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। कहने का आशय है कि उनमें से हिंसा की गई, करवायी गई और अनुमोदित की गई इस प्रकार त्रिविध है। इनमें से एक-एक फिर तीन प्रकार की है। जैसे कि मांस चर्म के लिए की हुई (हिंसा) अर्थात् लोभ

से। इसने अपकार किया (इस भावना से की हुई हिंसा) अर्थात् क्रोध से। इस हिंसा से मुझे धर्म (पुण्य) मिलेगा (ऐसी भावना से की हुयी हिंसा) अर्थात् मोह से। लोभ, क्रोध, मोह भी मृदु (मन्द), मध्य (पहले से अधिक), अधिमात्र (सबसे अधिक) ऐसे तीन-तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार हिंसा के सत्ताईस भेद होते हैं। ये मृदु, मध्य, अधिमात्र फिर तीन-तीन प्रकार के होते हैं जैसे कि मृदुमृदु, मध्यमृदु, तीव्रमृदु। इसी प्रकार मृदुमध्य, मध्यमध्य, तीव्र मध्य और मृदुतीव्र, मध्यतीव्र, अधिमात्रतीव्र। इस प्रकार हिंसा इक्यासी (81) भेद वाली होती है। फिर वह (हिंसा) नियम, विकल्प, समुच्चय भेद से प्राणधारियों के प्रकार अगणित होने के कारण असंख्य भेद वाली होती है। इस प्रकार असत्यादि वितर्कों में भी भेदों को समझ लेना चाहिये।

वे ये वितर्क दुःख, अज्ञानरूपी अनन्त फल वाले होते हैं, इस प्रकार जानकर (वितर्क विरोधी) भावना करनी चाहिए। दुःख और अज्ञानरूपी अनन्त फल है जिन-जिन हिंसादि वितर्कों के ऐसा समझकर वितर्कों के विरुद्ध अहिंसा आदि प्रतिपक्षों की भावना करनी चाहिये इसके पश्चात् वितर्कों के विरुद्ध प्रतिपक्ष भावना के स्वरूप को बतलाते हुए पतञ्जलि कहते हैं कि उसी प्रकार हिंसक प्रथम वध्य प्राणी के बल को अवरुद्ध करता है। पश्चात् शस्त्रादि के प्रहार के द्वारा दुःखी करता है। आगे जीवन से भी वियुक्त कर देता है। उस पशु के बल के अवरुद्ध करने से हिंसक के चेतन-अचेतन साधन निर्बल हो जाते हैं। दुःख उत्पन्न करने से हिंसक नरक दुःखदायी पशु, पक्षी आदि, तिर्यक-कीड़े, मकोड़े आदि के तथा मृतक शरीरों में कीट के रूप में जन्म लेकर दुःख अनुभव करता है। जीवन से वियुक्त करने से क्षण-क्षण जीवन की मरणासन्न अवस्था में वर्तमान, मरण को चाहता हुआ भी दुःखफल निश्चितरूप से भोग्य होने के कारण केवल किसी प्रकार श्वास लेता है और यदि वह हिंसा पुण्य के साथ मिलकर फल देवे, तो उस हिंसक को सुख प्राप्ति होने पर वह हिंसक अल्पायु होता है। इसी प्रकार असत्य आदि में भी यथा सम्भव योजना कर लेनी चाहिए। इस प्रकार हिंसादि वितर्कों का अनुगमन करने वाले अनिष्ट फल को जानता हुआ वितर्कों में मन को न लगावे।

इस प्रकार वितर्कों में से हिंसा के विषय में इस प्रकार से समझना चाहिए कि हिंसा के तीन प्रकार हैं—कृत (स्वयं की हुई), कारित (अन्य से करवाई हुई) और अनुमोदित (किसी के द्वारा की गई हिंसा को उचित मानना)। लोभ, क्रोध और मोह ये हिंसा के तीन कारण हैं। लोभ से कृत, लोभ से कारित, लोभ से अनुमोदित। इसी प्रकार से क्रोध से कृत, क्रोध से कारित, क्रोध से अनुमोदित। मोह से कृत, मोह से कारित, मोह से अनुमोदित। ये 9 भेद हुए। कारणों के स्तर के भेद से हिंसा तीन प्रकार की होती है—अल्पलोभ से, मध्यम स्तर के लोभ से, अधिक लोभ से की हुई हिंसा। अल्प क्रोध से, मध्यम स्तर के क्रोध से और अधिक क्रोध से की गई हिंसा। अल्प मोह से, मध्यम स्तर के मोह से और अधिक मोह से की गई हिंसा। इस प्रकार से कारणों के भेद से कृत हिंसा के 9 भेद हो जायेंगे। इसी प्रकार कृत तथा कारित हिंसा के 9-9 होने पर 27 प्रकार की हिंसा हुई। पुनः इनके भी मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद होने से हिंसा 81 प्रकार की होती है। हिंसा करने वालों के विचार तीन प्रकार के हो सकते हैं—

#### अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

---

## इकाई 11 आसन का अर्थ एवं स्वरूप विवेचन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 आसन का अर्थ
- 11.3 आसन का स्वरूप
- 11.4 आसन का लक्षण
- 11.5 ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न प्रकार के आसन
- 11.6 आसन करते समय सावधानियाँ
- 11.7 आसन का महत्त्व
- 11.8 सारांश
- 11.9 शब्दावली
- 11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 11.11 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### 11.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- आसन का अर्थ एवं स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- आसन के लक्षण के बारे में जान सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के आसनों के बारे में जान सकेंगे।
- आसन करते समय सावधानियों के बारे में जान सकेंगे।
- आसन के महत्त्व के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 11.1 प्रस्तावना

---

जब तक चित्त राग—द्वेषादि मल और विक्षेपों से भरा हुआ है, जब तक तत्त्व—ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। तत्त्व ज्ञान की उपलब्धि के लिये हृदय का शुद्ध और बुद्धि का निर्मल होना आवश्यक है। योगाङ्गों के अनुष्ठान से विवेकख्याति की उपलब्धि तथा चित्त की अशुद्धि का अपसारण होता है। इस प्रकार योगाङ्ग विवेक ख्याति की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है—‘योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।’ (योगसूत्र 2/28) चित्त के परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता—पवित्रता की प्राप्ति तथा अशुद्धि के अपसारण का कारण है। चित्त के परिशोधन, शुद्धि और निर्मलता पवित्रता के लिये योग आठ प्रकार के साधन बतलाता है, जिन्हें अष्टांग योग के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार अष्टांग योग ‘यम’ ‘नियम’ और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार एवं धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन है। इस

प्रकार इकाई—11 आसन का अर्थ एवं स्वरूप विवेचन के अन्तर्गत आसन का अर्थ एवं स्वरूप, लक्षण, विभिन्न प्रकार के आसन तथा उनको करते समय सावधानियाँ एवं उसके महत्त्व के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

---

## 11.2 आसन का अर्थ

---

आसन का सामान्य अर्थ है बैठना। लोक व्यवहार में जिस वस्त्र खण्ड या कम्बल का प्रयोग हम बैठने के लिए करते हैं, उसे 'आसन' कहते हैं। इसके अतिरिक्त लकड़ी, कुश या अन्य वस्त्र खण्ड का प्रयोग बैठने के लिए किया जाता है, उसे भी आसन कहा जाता है। इस प्रकार सामान्य व्यवहार में बैठने के लिए प्रयोग किए जाने वाले उपयोगी साधन को आसन कहते हैं। आसन शब्द संस्कृत के 'अस्' धातु से बना है जिसके दो अर्थ हैं प्रथम बैठने का स्थान तथा द्वितीय शारीरिक अवस्था है। बैठने के स्थान (Seat) का अर्थ है कि जिस पर बैठा जाता है वह आसन है जैसे—मृगछाल, कुश, कम्बल, वस्त्रखण्ड, चटाई, दरी आदि। आसन के दूसरे अर्थ शारीरिक अवस्था (Body Position) से तात्पर्य है। शरीर, मन तथा आत्मा की संयुक्त अवस्था अर्थात् शरीर, मन तथा आत्मा जब एक साथ व स्थिर हो जाती है, और उस स्थिति से जो सुख की अनुभूति होती है, वही स्थिति आसन है। आसन शब्द भी स्वयं में अपना अर्थ समाहित किए है।

**'आ' का अर्थ—**'आ' का अर्थ है आत्म अर्थात् आत्म अनुशासन अष्टांग योग का तीसरा अंग आसन योगाभ्यास में सहायक है। वृत्तियों के सकारात्मक प्रवाह व नकारात्मक वृत्तियों के निष्कासन के लिए मन का स्थिर होना आवश्यक है तथा आसन द्वारा स्थिरता की प्राप्ति होती है। स्थिर शरीर तथा एकाग्र मन द्वारा ही साधक आत्म अनुशासन में वध कर आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर प्रवेश पाते हैं, अर्थात् आत्मा से साक्षात्कार होकर अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

**'स' का अर्थ—**'स' का अर्थ है सर्व, अथवा सभी अर्थात् इस रूप में आसनों द्वारा व्यक्ति के सभी द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। वह जय में, पराजय में, शीत में, उष्ण में, भूख में, प्यास में सभी स्थितियों में सम हो जाता है। समत्व का भाव जाग्रत होता है।

**'न' का अर्थ—**'न' का अर्थ है नभ, अनन्त आकाश अर्थात् ब्रह्म से साक्षात्कार आसनों के द्वारा साधक अपने आत्म स्वरूप को अनन्त में लगा देता है। जिससे आसन सिद्ध होकर साधक को लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

---

## 11.3 आसन का स्वरूप

---

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। स्वस्थ मुनष्य ही चारों पुरुषार्थों में तीन की पूर्ति कर मोक्ष की कामना कर सकता है। आयुर्वेद का कथन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के मूल में आरोग्य है। आरोग्य के द्वारा ही मनुष्य अपने लौकिक कर्मों का सम्पादन करता है तथा स्वस्थ शरीर के द्वारा ही ईश्वर की आराधना में प्रवृत्त हो सकता है। इस शरीर को स्वस्थ रख कर ईश्वर के साथ तादात्म्य भाव स्थापित करने के लिए महर्षि पतंजलि ने योगांगों के अन्तर्गत 'आसन' का वर्णन किया है। पहले यम—नियम द्वारा व्यवहार की शुद्धि, तत्पश्चात् आसनों द्वारा स्थैर्य प्राप्त कर परम्ब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सके।

महर्षि पतंजलि ने आसन को अष्टांग योग के अन्तर्गत माना है। आसन अष्टांग योग का तीसरा अंग है। किन्तु हठयोग के ग्रन्थों में आसन को प्रथम स्थान दिया गया है।

प्रथम अंग के रूप में लेना इसके महत्व का परिचायक है। 'हठयोग प्रदीपिका' में इसका वर्णन इस प्रकार से है —

**‘हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।  
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥’**

अर्थात् हठयोग का प्रथम अंग होने से आसन को प्रथम कहते हैं। आसन शरीर तथा मन में स्थिरता व शरीर के विभिन्न अंगों में लाघव उत्पन्न करते हैं, तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। 'गोरक्षशतक' में वर्णन है —

**‘आसनं प्राणसंयामः प्रत्याहारोऽथ धारणा।  
ध्यान समाधिरेतानि योगांगानि भवन्ति षट्॥’**

(गोरक्ष शतक)

गोरक्षशतक में योग के छह अंग ही स्वीकार किए गये हैं। गोरक्षशतक में भी आसन को प्रथम अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

योगशास्त्रों में आसन का स्थान महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में योगशास्त्रों की तरह ही योगासनों का विशेष महत्व है। विश्व के प्राचीनतम व अपौरुषेय ग्रन्थ वेद हैं। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। वेदों में योगासनों का विशेष उल्लेख मिलता है। इस प्रकार योगासनों का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना वेदों का है। उपनिषदों में भी योगासन का उल्लेख मिलता है। उपनिषदों में मण्डलब्राह्मणोपनिषद् 1/1/5 में तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी आसनों का वर्णन किया गया है। तेजोबिन्दु उपनिषद् तथा अमृतनाद उपनिषद् में भी योगासनों का वर्णन किया गया है तथा आसन की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि आसनों का अभ्यास किए बिना योग में सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती है। आसन के द्वारा ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है।

## 11.4 आसन का लक्षण

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में तीसरे अंग के रूप में आसन का वर्णन किया है। किन्तु किसी विशेष आसन का वर्णन नहीं किया है। महर्षि पतंजलि ने आसन की केवल एक ही परिभाषा दी है जो निम्न प्रकार से है—‘स्थिरसुखमासनम्’ (पातजलयोगसूत्र, 2/46) अर्थात् स्थिरतापूर्वक और सुखपूर्वक जिसमें बैठा जा सके वहीं आसन है। महर्षि पतंजलि के अनुसार ये वे आसन हैं जैसे पद्मासन, स्वस्तिक आसन, भद्रासन आदि आसन स्थिरता व सुख देने वाले हैं अर्थात् ऐसे ध्यान के आसन जिसमें साधक को उपासना में सुख की प्राप्ति हो, उसी का अभ्यास करना चाहिए। योग के अभ्यासी को किसी ऐसे आसन का अभ्यास करना चाहिए, जिसमें वह घंटों सुखपूर्वक बैठ सके। क्योंकि चित्त-वृत्तियों के निरोध के लिए तप, उपासना, साधना के लिए आसन का स्थिर होना आवश्यक है।

महर्षि पतंजलि ने इस परिभाषा में दो बातें विशेष रूप से कहीं हैं, स्थिरता व सुख। स्थिरता से अभिप्राय है कि उपासना के समय शरीर की निश्चल अवस्था, अर्थात् उस समय शरीर का कोई भी अंग चंचल ना हो। ऐसी स्थिरता कि किसी भी कीट, पतंग आदि के शरीर पर बैठने पर भी स्थिरता भंग ना हो। अन्यथा शरीर के चंचल होते ही चित्त भी चंचल हो जाएगा। दूसरा शब्द है सुख जिसका अभिप्राय है कि साधक को आसन का पूर्ण अभ्यास हो, तभी उसे सुख की प्राप्ति हो सकती है। पूर्ण अभ्यास ना

होने से घुटने, पैरों आदि भागों में पीड़ा होने लगती है। अतः साधक जिस आसन में बैठा है उसमें किसी प्रकार का कष्ट ना होना। इस प्रकार जिसमें सुख पूर्वक, शरीर और आत्मा स्थिर हो उसे ही आसन समझना चाहिए।

---

### 11.5 ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न प्रकार के आसन

---

महर्षि पतंजलि ने आसन के कोई प्रकार नहीं बताए हैं। परन्तु वर्तमान में विभिन्न योग के ग्रन्थों, शास्त्रों में अनेक आसनों का वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में योगियों ने पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग तथा उनकी विशेषताओं का सूक्ष्मता से अध्ययन किया तब उन्होंने देखा कि पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग अलग प्रकार से हैं। उन्होंने उनका अनुसरण किया तथा आसन के रूप में उन्हें अपनाकर उनसे उन्हें स्वास्थ्य लाभ मिला। इस प्रकार उन पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग को आसन के रूप में अपनाकर उस प्रकार विशेष का नामकरण उसी पशु-पक्षी विशेष के नाम के साथ जोड़ दिया। जैसे-मकरासन, मत्स्यासन, मयूरासन, सिंहासन आदि। इसी के साथ-साथ योगियों ने कुछ आसनों के नाम स्थावर द्रव्यों की स्थितियों के अनुकरण के आधार पर रखे जैसे-पर्वत, वृक्ष, धनुष, चक्र, त्रिकोण आदि। इन्हें अपनाकर उनकी लाभ-हानि की विवेचना की तथा जिन स्थितियों से उन्हें लाभ मिला उन स्थितियों को अपनाकर उस स्थिति के आधार पर आसन का नामकरण किया। इस प्रकार आसनों की संख्या अनन्त हो गयी तथा अनेक प्रकार के आसन हो गए। परन्तु वर्तमान में विभिन्न योग के ग्रन्थों, हठयोग के ग्रन्थों में जो सर्वसम्मत आसन हैं, वे चौरासी आसन हैं। परन्तु हठ योग के ग्रन्थों जैसे-घेरण्ड संहिता में 32 आसनों का वर्णन है तथा हठप्रदीपिका में 15 आसनों का वर्णन है। आसनों की संख्या और प्रकार के विषय में शास्त्रों तथा विद्वानों में अनेक मत हैं। उपनिषदों में भी आसनों के विषय में अनेक मत हैं अमृतनादो उपनिषद् में तीन आसनों-पद्मासन, भद्रासन तथा स्वस्तिकासन का उल्लेख है। योग चूड़माण्युपनिषद् में दो आसन- कमलासन व सिद्धासन बताए गये हैं। ध्यानबिन्दु उपनिषद् में पद्मासन, भद्रासन, सिंहासन तथा सिद्धासन को मुख्य आसन के रूप में वर्णन किया गया है। इसी प्रकार दर्शनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में नौ आसनों का वर्णन मिलता है। स्वस्तिक आसन, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, गोमुख आसन, सिंहासन, मुक्तासन, सुखासन, मयूरासन। त्रिषिखिब्रह्मणो उपनिषद् में (2/34 - 52) में सत्रह आसनों का वर्णन किया गया है। जिनमें से ग्यारह आसनों के अतिरिक्त योगासन, बद्धपद्मासन, मयूरासन, उत्तान कूर्मासन, धनुरासन और पश्चिमोत्तानासन इन छह आसनों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उपनिषदों में आसन की संख्या भिन्न है तथा उनके प्रकार भी अनेकों हैं। साधारणतया आसनों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है-शरीर सर्वद्वनात्मक आसन, ध्यानात्मक आसन एवं विश्रान्तिकारक आसन।

---

### 11.6 आसन करते समय सावधानियाँ

---

हठयोग के ऐसे अनेक आसन हैं जिनके नियमित अभ्यास से शरीर स्वस्थ, हल्का और योग साधना के योग्य बन जाता है। किन्तु पतंजलि ने इस प्रकरण में उन आसनों की ओर संकेत किया है जिनमें निश्चल रहकर और सुखपूर्वक अधिक से अधिक समय तक ध्यान लगाकर बैठा जा सकता है। ये आसन निम्नलिखित हैं-सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन, समसंस्थान, वीरासन, भद्रासन, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यङ्क, क्रौंचनिषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन। इनमें ध्यान के लिये 'सिद्धासन' और 'पद्मासन' बहुत उपयोगी है। एक ही आसन में अधिक समय तक बैठे रहने का अभ्यास



धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिये। यदि पैर आदि किसी अंग में दर्द होने लगे तो उस अंग पर तह किया हुआ नरम कपड़ा रखकर बैठना चाहिए। एक आसन में जब दो-तीन घण्टे तक बिना हिले-जुले और आराम से बैठा जा सके तब आसन सिद्धि समझनी चाहिये। प्रारम्भ में एक दो बार बीच-बीच में आसन बदल सकते हैं। आसन सिद्ध करने का सरल उपाय यही है कि जब कभी बैठने की जरूरत हो तो उसी आसन में बैठने का प्रयत्न करें। जो अभ्यासी मोटापे या शरीर में कोई विकार होने के कारण इन आसनों में न बैठ सकें वे अर्ध पद्मासन, अर्ध सिद्धासन या किसी और आसन में दीवार का सहारा लेकर बैठ सकते हैं, किन्तु कमर की हड्डी को सीधा तथा कमर, गर्दन और सिर को सीधी रेखा में रखना बहुत आवश्यक है। इन सब आसनों में बाँयी हथेली एड़ियों के ऊपर सीधी रखकर और दाँयी हथेली भी इसी तरह बाँयी हथेली पर रखकर अर्थात् भैरवी मुद्रा में बैठना चाहिये अथवा हाथों को घुटनों पर रखकर या ज्ञानमुद्रा में बैठना चाहिये। मुख पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर करके बैठना चाहिये जिससे सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ती रहें।

आसन बिछाये बिना पृथ्वी पर बैठकर किसी प्रकार का आसन या साधना नहीं करनी चाहिये क्योंकि पृथ्वी पर बैठने से पृथ्वी हमारी शक्ति को खींच लेती है। कुशा, ऊन, सूत या मृगचर्म आदि से बने आसन पर बैठने से पृथ्वी के आकर्षण से कोई हानि नहीं होती। बैठने का आसन बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। सबसे नीचे कुशासन, उसके ऊपर ऊन का आसन और उसके ऊपर सूती आसन बिछाना चाहिये। मृगचर्म आदि चमड़े का आसन बिछाने से अहिंसा का पालन नहीं हो पाता।

सभी आसनों में मेरुदण्ड को सीधा रखना होता है क्योंकि मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी है। इस नाड़ी के रास्ते शक्ति ऊपर उठती है। मेरुदण्ड के सबसे निचले स्थान मूलाधार से शक्ति उठकर मस्तक के अन्दर सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है। साधक की उन्नति के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्व गामिनी होती है। विषयासक्ति जितनी कम हो जायेगी और वैराग्य की भावना बढ़ेगी, वह शक्ति उतनी ही ऊपर की ओर जायेगी। साधना की उन्नति इसी पर निर्भर करती है। मेरुदण्ड सीधा रखने से शक्ति सीधी आवागमन कर सकती है। मेरुदण्ड टेढ़ा रखने से सुषुम्ना टेढ़ी हो जाती है। जिसकी सुषुम्ना टेढ़ी होती है वह उच्च भावना या उच्च धारणा भी नहीं कर सकता। समाधि लाभ तो असम्भव ही है।

## 11.7 आसन का महत्त्व

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि—

“हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।  
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥”

(हठयोग प्रदीपिका)

यम—निमय के बाद आसनों का प्रथम स्थान है, इसलिए आसन बताये जाते हैं। आसनों का नियमित अभ्यास करने से शरीर और मन इधर—उधर नहीं भटकते। साधक का शरीर नीरोग हो जाता है और उसे हल्कापन अनुभव होने लगता है। आसनों से शरीर में तमोगुण घटने के कारण हल्कापन अनुभव होता है। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने आसन सिद्धि के उपाय साधन पाद में इन शब्दों में बताया है कि—‘प्रयत्न शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/47) अर्थात् प्रयत्न की शिथिलता से तथा अनन्त (परमात्मा) में मन लगाने से आसन सिद्ध होता है। प्रयत्न की शिथिलता

और अनन्त में मन न लगाने से योग के साधक को जप-उपासना आदि में भी बाधाएँ आ जाती हैं। यदि साधक के शरीर में कम्पन या अकड़ाहट होगी तो योग साधना में बाधा उत्पन्न होती है। जिससे साधक बहुत देर तक योगसाधना में नहीं बैठ सकता है। अतः शरीर में मृदुता बनाये रखने के लिए प्रयत्न की शिथिलता आवश्यक है। शरीर की स्वाभाविक चेष्टाओं का नाम ही प्रयत्न है। तथा अनन्त में मन लगा देना अर्थात् अनन्त समापत्ति से अभिप्राय परमेश्वर से तादात्म्य करना अर्थात् ईश्वर के गुण, चिन्तन तथा उनके अनुरूप भावना करने में मन को लगाना। इस प्रकार आसन की सिद्धि के लिए ईश्वरीय शक्ति पर मन को लगा देना अर्थात् अपनी ओर से प्रयत्न करना तथा मन को ईश्वर को सौंप देना। जब इस तरह से आसन किये जाएँ तो उसे ईश्वरीय शक्ति से वह आसन सिद्ध हो जाते हैं। महर्षि व्यास ने कहा है कि प्रयत्नोपरम् से आसन सिद्ध होती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि अनन्त के चिन्तन द्वारा आसन स्थिर हो सकता है। स्वामी हरिहरानन्द ने कहा है कि आसन सिद्धि अर्थात् शरीर की सम्यक् स्थिरता तथा सुखपूर्वक प्रयत्नशैथिल्य और अनन्त समापत्ति द्वारा होती है। इस प्रकार आसन तभी सिद्ध होता है, जब अस्थिरता व प्रयत्न की शिथिलता का अभाव होगा, क्योंकि प्रयत्न करते रहने पर स्थिरता प्राप्त नहीं हो सकती है। और उसे ना ही स्थिरता का भाव प्राप्त होता है। जैसे-जैसे शरीर स्थिरता को प्राप्त होता है वैसे ही शरीर की चेष्टाएं समाप्त हो जाती हैं और साधक शरीर भाव से ऊपर उठ जाता है। मन अनन्त में समाहित हो जाता है। यही आसन सिद्धि है। उपनिषदमें आसन के महत्व के बारे में कहा है कि 'सुखनैव भवेत् यस्मिन् जस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्' अर्थात् जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त विज्ञानभिक्षु ने कहा है कि जितने भी जीवों की जातियाँ हैं, उनके बैठने के जो आकार विशेष हैं। वे सब आसन कहलाते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि आसन के स्थिर होने का तात्पर्य शरीर के अस्तित्व का बिल्कुल भान तक ना होना है। इसके अतिरिक्त चरणदास ने कहा है कि चौरासी लाख आसन जानों, योनियों की बैठक पहचानो। अर्थात् विभिन्न योनियों के जीव-जन्तु जिस अवस्था में बैठते हैं उसी स्वरूप को आसन कहते हैं।

#### बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइयें।

- I. आसन का सामान्य अर्थ है। (बैठना/सोना)
- II. महर्षि पतंजलि ने आसन की परिभाषा दी है। (स्थिरसुखमासनम्/अस्थिरसुखमासनम्)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. अष्टांग योग में आसन का .....स्थान है। (तृतीय/प्रथम)
- II. हठयोगप्रदीपिका में आसन.....स्थान है। (प्रथम/तृतीय)
- III. आसनसिद्धि का उपाय.....वर्णित है। (साधनपाद में/समाधिपाद में)

#### बोध प्रश्न-2

1. ग्रन्थों में प्रतिपादित आसनों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

2. आसन के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. आसन करते समय सावधानियों को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

योग दर्शन में आसन को विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिए।

**11.8 सारांश**

पतंजलि ने आसन को परिभाषित करते हुए कहा है कि—‘स्थिरसुखमासनम्’ अर्थात् निश्चय सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। हठयोग में आसनों के बहुत भेद बतलाये गये हैं, परंतु यहाँ सूत्रकार ने उनका वर्णन नहीं करके, बैठने का तरीका साधक की इच्छा पर ही छोड़ दिया है। भाव यह है कि जो साधक अपनी योग्यता के अनुसार जिस रीति से बिना हिले-डुले स्थिर भाव से सुखपूर्वक बिना किसी प्रकार की पीड़ा के बहुत समय तक बैठ सके वही आसन उसके लिये उपयुक्त है। इसके सिवा, जिस पर बैठकर साधना की जाती है, उसका नाम भी आसन है, अतः वह भी स्थिर और सुखपूर्वक बैठने लायक होना चाहिये। इस प्रकार शरीर को सुख देने वाले चित्त को स्थिर रखने वाले बैठने के जो प्रकार हैं, उन्हें आसन कहते हैं। आसनों में पद्मासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन तथा दण्डासन आदि विविध प्रकार के आसन हैं। वैसे 84 आसन प्रसिद्ध हैं। आसनों के अभ्यास से शरीर और मन दोनों ही स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार **इकाई-11 आसन का अर्थ एवं स्वरूप विवेचन** के अन्तर्गत आसन का अर्थ एवं स्वरूप, लक्षण, विभिन्न प्रकार के आसन तथा उनको करते समय सावधानियाँ एवं उसके महत्त्व के बारे में अध्ययन किया गया।

**11.9 शब्दावली**

पद्मासन	—	कमल के तरह बैठने का ढंग
नीरोग	—	स्वस्थ
कूर्मासन	—	कछुएँ के तरह बैठने का ढंग
सम्यक्	—	उचित

## 11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातञ्जल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

## 11.11 बोध प्रश्न/उत्तर

### बोध प्रश्न-1

1. (i) बैठना (ii) स्थिरसुखमासनम्
2. (i) तृतीय(ii) प्रथम (iii) साधनपाद

### बोध प्रश्न-2

1. ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न प्रकार के आसन—महर्षि पतञ्जलि ने आसन का कोई प्रकार नहीं बताया है। परन्तु वर्तमान में विभिन्न योग के ग्रन्थों, शास्त्रों में अनेक आसनों का वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में योगियों ने पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग तथा उनकी विशेषताओं का सूक्ष्मता से अध्ययन किया तब उन्होंने देखा कि पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग अलग प्रकार से हैं। उन्होंने उनका अनुसरण किया तथा आसन के रूप में उन्हें अपनाकर उनसे उन्हें स्वास्थ्य लाभ मिला। इस प्रकार उन पशु-पक्षियों के बैठने के ढंग को आसन के रूप में अपनाकर उस प्रकार विशेष का नामकरण उसी पशु-पक्षी विशेष के नाम के साथ जोड़ दिया। जैसे—मकरासन, मत्स्यासन, मयूरासन, सिंहासन आदि। इसी के साथ-साथ योगियों ने कुछ आसनों के नाम स्थावर द्रव्यों की स्थितियों के अनुकरण के आधार पर रखे जैसे—पर्वत, वृक्ष, धनुष, चक्र, त्रिकोण आदि। इन्हें अपनाकर उनकी लाभ-हानि की विवेचना की तथा जिन स्थितियों से उन्हें लाभ मिला उन स्थितियों को अपनाकर उस स्थिति के आधार पर आसन का नामकरण किया। इस प्रकार आसनों की संख्या अनन्त हो गयी तथा अनेक प्रकार के आसन हो गए। परन्तु वर्तमान में विभिन्न योग के ग्रन्थों, हठयोग के ग्रन्थों में जो सर्वसम्मत आसन हैं, वे चौरासी हैं। परन्तु हठ योग के ग्रन्थों जैसे—घेरण्ड संहिता में 32 आसनों का वर्णन है तथा हठप्रदीपिका में 15 आसनों का वर्णन है। आसनों की संख्या और प्रकार के विषय में शास्त्रों तथा विद्वानों में अनेक मत हैं। उपनिषदों में भी आसनों के विषय में अनेक मत हैं अमृतनादो उपनिषद में तीन आसनों—पद्मासन, भद्रासन तथा स्वस्तिकासन का उल्लेख है। योग

चूड़मण्युपनिषद् में दो आसन— कमलासन व सिद्धासन बताए गये हैं। ध्यानबिन्दु उपनिषद् में पद्मासन, भद्रासन, सिंहासन तथा सिद्धासन का मुख्य आसन के रूप में वर्णन किया गया है। इसी प्रकार दर्शनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में नौ आसनों का वर्णन मिलता है। स्वस्तिक आसन, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, गोमुख आसन, सिंहासन, मुक्तासन, सुखासन, मयूरासन। त्रिषिखिब्रह्मणो उपनिषद् में (2/34 – 52) में सत्रह आसनों का वर्णन किया गया है। जिनमें से ग्यारह आसनों के अतिरिक्त योगासन, बद्धपद्मासन, मयूरासन, उत्तान कूर्मासन, धनुरासन और पश्चिमोत्तानासन इन छह आसनों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उपनिषदों में आसन की संख्या भिन्न है तथा उनके प्रकार भी अनेकों हैं। साधारणतया आसनों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—शरीर संवर्द्धनात्मक आसन, ध्यानात्मक आसन एवं विश्रान्तिकारक आसन।

2. **आसन का स्वरूप**— स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। स्वस्थ मनुष्य ही चारों पुरुषार्थों में तीन की पूर्ति कर मोक्ष की कामना कर सकता है। आयुर्वेद का कथन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के मूल में आरोग्य है। आरोग्य के द्वारा ही मनुष्य अपने लौकिक कर्मों का सम्पादन करता है तथा स्वस्थ शरीर के द्वारा ही ईश्वर की आराधना में प्रवृत्त हो सकता है। इस शरीर को स्वस्थ रख कर ईश्वर के साथ तादात्म्य भाव स्थापित करने के लिए महर्षि पतंजलि ने योगांगों के अन्तर्गत 'आसन' का वर्णन किया है। पहले यम—नियम द्वारा व्यवहार की शुद्धि, तत्पश्चात् आसनों द्वारा स्थैर्य प्राप्त कर परमब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सके। महर्षि पतंजलि ने आसन को अष्टांग योग के अन्तर्गत माना है। आसन अष्टांग योग का तीसरा अंग है। किन्तु हठयोग के ग्रन्थों में आसन को प्रथम स्थान दिया गया है। प्रथम अंग के रूप में लेना इसके महत्व का परिचायक है। 'हठयोग प्रदीपिका' में इसका वर्णन इस प्रकार से है —

‘हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।  
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥’

अर्थात् हठयोग का प्रथम अंग होने से आसन को प्रथम कहते हैं। आसन शरीर तथा मन में स्थिरता व शरीर के विभिन्न अंगों में लाघव उत्पन्न करते हैं, तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। 'गोरक्षशतक' में वर्णन है —

‘आसनं प्राणसंयामः प्रत्याहारोऽथ धारणा।  
ध्यान समाधिरेतानि योगांगानि भवन्ति षट्॥’

(गोरक्ष शतक)

गोरक्षशतक में योग के छह अंग ही स्वीकार किए गये हैं। गोरक्षशतक में भी आसन को प्रथम अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

3. **आसन करते समय सावधानियाँ**—हठयोग के ऐसे अनेक आसन हैं जिनके नियमित अभ्यास से शरीर स्वस्थ, हल्का और योग साधना के योग्य बन जाता है। किन्तु पतंजलि ने इस प्रकरण में उन आसनों की ओर संकेत किया है जिनमें निश्चल रहकर और सुखपूर्वक अधिक से अधिक समय तक ध्यान लगाकर बैठा जा सकता है। ये आसन निम्नलिखित हैं—सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन, समसंस्थान, वीरासन, भद्रासन, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यङ्क, क्रौंचनिषदन,

हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन। इनमें ध्यान के लिये 'सिद्धासन' और 'पद्मासन' बहुत उपयोगी है। एक ही आसन में अधिक समय तक बैठे रहने का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिये। यदि पैर आदि किसी अंग में दर्द होने लगे तो उस अंग पर तह किया हुआ नरम कपड़ा रखकर बैठना चाहिए। एक आसन में जब दो-तीन घण्टे तक बिना हिले-जुले और आराम से बैठा जा सके तब आसन सिद्धि समझनी चाहिये। प्रारम्भ में एक दो बार बीच-बीच में आसन बदल सकते हैं। आसन सिद्ध करने का सरल उपाय यही है कि जब कभी बैठने की जरूरत हो तो उसी आसन में बैठने का प्रयत्न करें। जो अभ्यासी मोटापे या शरीर में कोई विकार होने के कारण इन आसनों में न बैठ सकें वे अर्ध पद्मासन, अर्ध सिद्धासन या किसी और आसन में दीवार का सहारा लेकर बैठ सकते हैं, किन्तु कमर की हड्डी को सीधा तथा कमर, गर्दन और सिर को सीधी रेखा में रखना बहुत आवश्यक है। इन सब आसनों में बाँयी हथेली एड़ियों के ऊपर सीधी रखकर और दाँयी हथेली भी इसी तरह बाँयी हथेली पर रखकर अर्थात् भैरवी मुद्रा में बैठना चाहिये अथवा हाथों को घुटनों पर रखकर या ज्ञानमुद्रा में बैठना चाहिये। मुख पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर करके बैठना चाहिये जिससे सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ती रहें।

आसन बिछाये बिना पृथ्वी पर बैठकर किसी प्रकार का आसन या साधना नहीं करनी चाहिये क्योंकि पृथ्वी पर बैठने से पृथ्वी हमारी शक्ति को खींच लेती है। कुशा, ऊन, सूत या मृगचर्म आदि से बने आसन पर बैठने से पृथ्वी के आकर्षण से कोई हानि नहीं होती। बैठने का आसन बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। सबसे नीचे कुशासन, उसके ऊपर ऊन का आसन और उसके ऊपर सूती आसन बिछाना चाहिये। मृगचर्म आदि चमड़े का आसन बिछाने से अहिंसा का पालन नहीं हो पाता।

सभी आसनों में मेरुदण्ड को सीधा रखना होता है क्योंकि मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी है। इस नाड़ी के रास्ते शक्ति ऊपर उठती है। मेरुदण्ड के सबसे निचले स्थान मूलाधार से शक्ति उठकर मस्तक के अन्दर सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है। साधक की उन्नति के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्व गामिनी होती है। विषयासक्ति जितनी कम हो जायेगी और वैराग्य की भावना बढ़ेगी, वह शक्ति उतनी ही ऊपर की ओर जायेगी। साधना की उन्नति इसी पर निर्भर करती है। मेरुदण्ड सीधा रखने से शक्ति सीधी आवागमन कर सकती है। मेरुदण्ड टेढ़ा रखने से सुषुम्ना टेढ़ी हो जाती है। जिसकी सुषुम्ना टेढ़ी होती है वह उच्च भावना या उच्च धारणा भी नहीं कर सकता। समाधि लाभ तो असम्भव ही है।

#### अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

---

## इकाई 12 प्राणायाम के विविध अर्थ व स्वरूप का विस्तृत विवेचन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 12.0 उद्देश्य
- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 प्राणायाम का अर्थ व स्वरूप
- 12.3 प्राणायाम का लक्षण
- 12.4 प्राणायाम के विविध प्रकार
  - 12.4.1 बाह्य वृत्ति प्राणायाम
  - 12.4.2 आभ्यान्तर वृत्ति प्राणायाम
  - 12.4.3 स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम
  - 12.4.4 बाह्य आभ्यान्तर विषयाक्षेपी
- 12.5 अन्य योगग्रन्थों में प्राणायाम के विभिन्न प्रकार
- 12.6 प्राणायाम का महत्व
- 12.7 सारांश
- 12.8 शब्दावली
- 12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.10 बोध/अभ्यास प्रश्न के उत्तर

---

### 12.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- प्राणायाम का अर्थ व स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- प्राणायाम के लक्षण के बारे में जान सकेंगे।
- प्राणायाम के विविध प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
- बाह्य वृत्ति प्राणायाम के बारे में जान सकेंगे।
- आभ्यान्तर वृत्ति प्राणायाम के बारे में जान सकेंगे।
- स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम के बारे में जान सकेंगे।
- बाह्य आभ्यान्तर विषयाक्षेपी के बारे में जान सकेंगे।
- प्राणायाम के महत्व के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 12.1 प्रस्तावना

---

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के चौथे अंग के रूप में प्राणायाम को स्थान दिया है। योगदर्शन में वर्णन है कि आसन के सिद्ध होने पर श्वास—प्रश्वास की गति का विच्छेद

ही प्राणायाम है। हमारे ऋषि मुनियों ने प्राणायाम के महत्व को जानते हुये बहुत ही सहज व सरल रूप में प्राणायाम का वर्णन किया है। प्राणायाम जीवन जीने की एक विधि, एक कला है। प्राणायाम स्वयं को उस विचार के साथ एकीकृत करने की कला है। प्राणायाम, प्राण वायु के शुद्ध सात्विक रूप को पूरे शरीर में विस्तारित करने की कला है। इस प्रकार इकाई-12 प्राणायाम के विविध अर्थ व स्वरूप का विस्तृत विवेचन के अन्तर्गत प्राणायाम का अर्थ व स्वरूप, लक्षण, प्रकार एवं महत्व के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

## 12.2 प्राणायाम का अर्थ व स्वरूप

प्राणायाम शब्द संस्कृत व्याकरण के दो शब्दों से मिलकर बना है, प्राण-आयाम। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक अन् धातु से मानी गई है। प्राण का आशय जीवनी शक्ति तथा आयाम से आशय विस्तार, नियमन या नियंत्रण से है। अर्थात् कहने का आशय यह है कि प्राणायाम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राण पर नियंत्रण कर उसका विस्तार किया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि प्राण का स्वरूप क्या है? प्राण शब्द का अर्थ जीवनी शक्ति के रूप में लिया गया है। प्रश्नोपनिषद् के अनुसार प्राण की व्याख्या संकल्प के रूप में की गई है। प्राण सम्पूर्ण सृष्टि का मूल संरक्षक है। अथर्ववेद में प्राण के बारे में कहा गया है—

‘प्राण प्रज्ञा अनुवस्ते पितापुत्रमिव प्रियम्।

प्राणो हसर्वस्वयेश्वरो॥’

(अथर्ववेद 11/4/10)

प्राण पिता है और उसके लिये सारे प्राणी पुत्र की तरह हैं, प्राण सम्पूर्ण सृष्टि के ईश्वर हैं। इस प्रकार प्राण एक ऐसी दिव्य शक्ति है, जिसके कारण इस ब्रह्माण्ड के जड़ व चेतन अपने स्वरूप में दिखाई देती है। यह प्राण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यही ऊर्जा है जो जीवन, संरक्षण व विनाश भी करती है।

## 12.3 प्राणायाम का लक्षण

1. महर्षि पतंजलि के अनुसार—योगसूत्र के साधनपाद में महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के बारे में कहा है कि ‘तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः’ (पातञ्जल योगसूत्र साधनपाद, 2/49) अर्थात् उस आसन के सिद्ध होने के पश्चात श्वास और प्रश्वास की गति का स्थिर हो जाना, विच्छेद हो जाना ही प्राणायाम है।
2. गोरक्षनाथ के अनुसार—‘प्राणः स्वदेहजीवायुः आयाम तन्तिरोनमिति।’ अर्थात् अपनी देह के जीवन की अवस्था का नाम प्राण है, और उस अवस्था के अवरोध को आयाम कहते हैं। अर्थात् जीवन की अवस्था के अवरोध का नाम प्राणायाम है।
3. बोधसागर के अनुसार—‘हठीनधिक स्त्वेकः प्राणायाम परिश्रमः।’ अर्थात् हठयोगियों का मुख्य श्रम साध्य प्राणायाम है।
4. स्वामी हरिहरानंद के अनुसार—श्वासगति तथा प्रश्वासगति का रोध करना ही प्राणायाम है।



5. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार—‘प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता।’ अर्थात् प्राण की स्थिरता को प्राणायाम कहते हैं।

## 12.4 प्राणायाम के विविध प्रकार

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के प्रकारों के बारे में कहा है कि—  
‘बाह्यभ्यान्तरस्तंभवृत्तिर्दशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः’ (पातजल योगसूत्र साधनपाद, 2/50) अर्थात् प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति ये तीन प्रकार का होता है, तथा वह देश, काल और संख्या द्वारा भली-भाँति देखा हुआ दीर्घ व सूक्ष्म हो जाता है।

### 12.4.1 बाह्य वृत्ति प्राणायाम

बाह्यवृत्ति प्राणायाम वह है जिसमें श्वास को बाहर नियंत्रित रूप से निकाल कर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव करना होता है, इसे **रेचक** भी कहते हैं। कहने का आशय यह है कि प्राणवायु को शरीर से बाहर निकाल कर रोकना ही बाह्य वृत्ति है। साथ ही साथ यह आकलन करना होता है कि प्राण बाहर कहाँ ठहरा है, कितने समय के लिये ठहरा है, और उतने समय में प्राण की गति की स्वाभाविक संख्या क्या है? इसे ही बाह्यवृत्ति प्राणायाम कहते हैं। अभ्यास लगातार करते रहने पर यह दीर्घ अर्थात् देर तक रुकने वाला हो जाता है तथा अनायास सिद्ध हो जाता है।

### 12.4.2 आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम

श्वास अन्दर खींच कर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव करना आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम है, इसे **पूरक** भी कहा जाता है। आभ्यन्तर वृत्ति के अन्तर्गत प्राणवायु को भीतर ले जाकर भीतर ही जितने काल तक सुखपूर्वक प्राणवायु को रोक सके रोकें रहना होता है, प्राणवायु को रोकने के साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना कि आभ्यन्तर देश में प्राण कहाँ ठहरा है, वहाँ कितनी देर तक सुखपूर्वक ठहरा और उतनी देर में प्राण की गति की स्वाभाविक संख्या का अनुमान लगाना है, इसे ही आभ्यन्तर के साथ ही पूरक प्राणायाम भी कहते हैं। इसका अभ्यास यदि निरन्तर करते हैं तो यह धीरे-धीरे दीर्घ व सूक्ष्म होता जाता है।

### 12.4.3 स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम

श्वास प्रश्वास दोनों गतियों के अभाव से प्राण को जहाँ है वहीं रोक देना स्तम्भवृत्ति कहलाता है। इसे कुम्भक प्राणायाम भी कहते हैं। स्तम्भवृत्ति प्राणायाम के अन्तर्गत प्राणगति को रोकने का अभ्यास किया जाता है। इस प्राणायाम में प्राणवायु अपने स्वाभाविक क्रम से बाहर निकली हो अथवा भीतर गयी हो, जहाँ भी हो उसे वहीं रोक देना, उसकी गति को स्तम्भित कर देना है। तथा इस बात का आकलन करना कि प्राण कहाँ रुके हैं, कितने समय तक सुखपूर्वक रुके हैं, इस समय प्राण की स्वाभाविक गति की संख्या कितनी होती है। लम्बे समय तक अभ्यास बनाये रखने पर यह दीर्घ व सूक्ष्म हो जाता है। प्राणायाम की तीन विधियों के द्वारा प्राण ऊर्जा का विस्तार, परिशोधन, परिमार्जन हो जाता है। परन्तु प्राणायाम की इस साधना में निरन्तरता, नियमिता तथा धैर्य के साथ-साथ आहार-विहार का कठोर अनुशासन होना आवश्यक है। निरन्तर अभ्यास से साधक की योग्यता का आधार विकसित होता है, तथा चतुर्थ विधि के लिये साधक सिद्ध हो जाता है।

#### 12.4.4 बाह्य अभ्यान्तर विषयाक्षेपी

प्राणायाम के साधक जिन्होंने प्राणायाम की प्रक्रिया के तीनों प्राणायाम का सम्यक् अभ्यास किया है, उन साधकों के लिये चौथे प्राणायाम की स्वतः ही अनुभूति होने लगती है, क्योंकि यह प्राणायाम उन लोगों के लिये है जो सूक्ष्म चेतना का संस्पर्श पाकर परा प्रकृति की झलक पा चुके हों। प्राणायाम के इस भेद को महर्षि पतंजलि ने अगले सूत्र में वर्णित किया है—‘बाह्यभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः।’ (पातञ्जल योगसूत्र साधनपाद, 2/51) अर्थात् बाहर और भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला चौथा प्राणायाम है। बाहर व भीतर के विषयों का चिंतन का परित्याग कर देने से अर्थात् इस विषय पर ध्यान न देकर कि इस समय प्राण बाहर निकल रहे हैं, या भीतर जा रहे हैं, अथवा चल रहे हैं, कि ठहरे हुये हैं, तथा मन को ईष्ट चिंतन में लगा देने से संख्या और काल के ज्ञान के बिना ही स्वतः प्राणों की गति जिस किसी देश में रुक जाती है, वह चौथा प्राणायाम है।

स्वामी हरिहरानंद ने कहा है कि चिरकाल तक अभ्यस्त होकर जब बाह्य और अभ्यान्तर वृत्तियाँ अति सूक्ष्म होती हैं, तब उसका आक्षेप या अतिक्रमपूर्वक जो स्तंभवृत्ति होती है, वही चतुर्थ स्तम्भ वृत्ति है।

#### 12.5 अन्य योगग्रन्थों में प्राणायाम के विभिन्न प्रकार

हठप्रदीपिका के अनुसार—

‘सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा,  
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः॥’

अर्थात् सूर्य भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक हैं। यहाँ प्राणायाम को कुम्भक कहा गया है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार —

‘सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।  
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः॥’

अर्थात् सहित, सूर्य भेदन, उज्जायी शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली ये आठ प्रकार के प्राणायाम हैं। इस प्रकार हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता में आठ-आठ प्रकार के प्राणायामों का वर्णन किया गया है।

#### 12.6 प्राणायाम का महत्त्व

योग शास्त्रों में प्राण संचय पर अधिक बल दिया जाता है, तथा आध्यात्म शास्त्र में प्राणायाम की अधिक महत्ता कही गयी है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के महत्त्व के बारे में कहा है कि—‘ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।’ (पातञ्जल योगसूत्र साधनपाद, 2/51) अर्थात् प्राणायाम के द्वारा हमारे ज्ञान के ऊपर जो अज्ञान का आवरण है वह क्षीण हो जाता है। कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार प्रातः काल उदय हुआ सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार प्राणायाम अशुद्धता को हटाता हुआ साधक को शुद्ध कर देता है। महर्षि पतंजलि ने शरीर शुद्धि के साथ ही धारणा की योग्यता प्राणायाम द्वारा प्राप्त होती है, इस पर बल दिया है—‘धारणासु च योग्यता मनसः।’ (पातञ्जल योगसूत्र साधनपाद, 2/51) अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से धारणा की

योग्यता आ जाती है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि प्राणायाम से चित्त निर्मल होता है, 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।' (पातजल योगसूत्र समाधिपाद, 1/34) अथवा प्राणवायु को बार-बार बाहर निकालने तथा बाहर ही रोकने (कुम्भक) के अभ्यास से भी चित्त निर्मल होता है।

**महर्षि व्यास के अनुसार—**प्राणायाम के अभ्यास से ही योग्यता होती है अथवा प्राण के प्रच्छर्दन विधारण के द्वारा स्थिति साधित होता है।

**स्वामी हरिहरानन्द के अनुसार—**आध्यात्मिक देश में चित्त का बंधन धारणा कहलाती है। प्राणायाम में निरन्तर आध्यात्मिक देश की भावना करनी पड़ती है।"

**हठप्रदीपिका के अनुसार—**

‘चले वाते चलेचितं निश्चलं भवेत्।

योगी स्थणुत्वामाप्नोति ततोवायुं निरोधयेत्॥’ (2/2)

वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान होता है। तथा वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है, तब योगी को स्थिरता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कहा गया है कि—‘प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।’ (हठप्रदीपिका 2/16) अर्थात् अर्थात् उचित रीति से प्राणायाम करने से सभी रोगों का नाश होता है। इसमें आगे कहा गया है कि—

‘ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः।

अभूवन्नतकभयात् तस्मात् पवनमभ्यसेत्॥’

(हठप्रदीपिका 2/39)

अर्थात् ब्रह्म आदि देवता भी काल के भय से प्राणायाम के अभ्यास में लगे रहते हैं। इसलिये प्राणायाम का अभ्यास सभी को करना चाहिये। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका महत्व यह है कि इसका अभ्यास नियमित करने से शरीर एवं मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम से हमारा जीवन उत्कृष्ट बन जाता है। प्राणायाम का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार प्राणायाम स्वास्थ्य संवर्द्धन हेतु अति उत्तम अभ्यास माना गया है, जैसा कि अथर्ववेद के प्राणसूक्त में प्राणायाम द्वारा शारीरिक रोग विनाश हेतु प्राणायाम को बताया गया है। वेदों के मन्त्रों में प्राण के लिये ‘औषध’ व ‘भेषजम्’ शब्द का प्रयोग किया गया है।

‘अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्’

(अथर्ववेद, 11/4/6)

‘अथो यद् भेषजं तवतस्य नो धेहि जीवसे’

(अथर्ववेद, 11/4/9)

स्वस्थ रहने के लिये रक्त की शुद्धि आवश्यक है। अतः शुद्ध रक्त प्राणायाम से ही प्राप्त होता है। प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले रक्त को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन मिलती है। प्राणायाम के द्वारा जितनी अधिक मात्रा में ऑक्सीजन मिलती है, उतनी अन्य किसी अभ्यास के द्वारा नहीं मिल पाती है। प्राणायाम शरीर को शुद्ध व स्वस्थ कर उपासना योग्य बना देता है। आयुर्वेद के अनुसार अनेक शारीरिक रोग जैसे मधुमेह, प्रमेह, कैंसर तथा रक्तविकार के रोगों में प्राणायाम विशेष रूप से लाभकारी है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम विकृत मनःस्थिति को सुधारता है। प्राणायाम के द्वारा मन

शरीर के बंधन से मुक्त होता है। प्राणायाम शरीर के साथ-साथ मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्राणायाम से मस्तिष्क की विभिन्न क्रियाएँ व्यवस्थित हो जाती हैं। जिससे मस्तिष्क की कार्यक्षमता व स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। मानसिक तनाव दूर होता है। मानसिक रोगों और मनोरोगों में प्राणायाम प्रभावशाली है। इन रोगों से मनुष्य मुक्त हो कर स्मरण शक्ति व बौद्धिक क्षमता में वृद्धि कर सकता है। प्राणायाम का आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जैसा कि सामवेद में कहा गया है—‘धातुर्धुतानात्सवितुश्चविष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः।’ (सामवेद, 599) अर्थात् प्राण संयमी योगी शरीर रथ द्वारा भव सागर तैरने का ज्ञान प्राप्त करता है।

‘न्वे सोम परिस्त्रव स्वादिष्ठो अंङ्गिरोभ्य ।

वारिवोविद् घृतं पयः।।’

(सामवेद, 981)

अर्थात् प्राणायाम अभ्यासियों के लिये परमात्मा आनन्दरस रूप में अत्यन्त स्वाद है। प्रतिफल में ऐसे उपासकों को परमात्मा आध्यात्मिक सम्पत्तियाँ प्रदान करता है। प्राणायाम से प्रभु प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। आध्यात्मिक लाभ हेतु वेदों में ऋग्वेद ऋचाओं में वर्णन किया गया है कि जो परमात्म परायण पुरुष, गुणों में श्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय है, वह अपनी बुद्धि से आध्यात्मिक यज्ञ में ज्ञान की आहुति प्रदान करें, जैसे कर्म रूपी यज्ञ वक्ता—पुरुष वाणी रूपी कर्म को करता है। वैसे ही साधक सर्वरक्षक परमात्मयज्ञ कुण्ड में दश प्राणों को डालते हैं। (ऋग्वेद, 9/91/1) प्राणविद्या ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में विशेष रूप से वर्णित है। प्राणायाम से राजयोग की प्राप्ति सम्भव है, मनुस्मृति में कहा गया है—

‘देहयन्तेध्याय मासानां धातुना हि यथा मलाः।

त्योन्द्रिप्राणा दहन्ते दोषाः प्राणस्थ निग्रहात्।।’

अर्थात् जैसे अग्नि से तपाये स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के भय जल जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के अनुष्ठान से इन्द्रियों में आ गये दोष विकार नष्ट हो जाते हैं, केवल इन्द्रियों के दोष ही दूर नहीं होते, प्रयुक्त देह, मन प्राण के विकार दूर होकर इन पर विशिष्टत्व प्राप्त हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि—‘चित्त में स्वभावतः समस्त ज्ञान भरा है। वह सत्य पदार्थ द्वारा निर्मित है, परन्तु रज और तम पदार्थों से ढका हुआ है। प्राणायाम के द्वारा चित्त का यह आवरण हट जाता है। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि प्राणायाम का अन्य फल बताते हैं—‘धारणासु च योग्यता मनसः’ (पातञ्जल योगसूत्र 2/53) अर्थात् प्राणायाम से धारणा की योग्यता आ जाती है।

### बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

- प्राणायाम का प्रथम प्रकार क्या है। (आभ्यन्तर/बाह्य)
- अष्टांग योग में प्राणायाम का स्थान कौन है। (चतुर्थ/तृतीय)
- प्राणायाम से कौन से लाभ प्राप्त होते हैं। (शारीरिक/भौतिक)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- प्राणायाम शब्द.....मिलकर बना है। (प्राण और आयाम/प्राण और व्यायाम)

**बोध प्रश्न-2**

1. प्राणायाम का अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. प्राणायाम के प्रथम प्रकार को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. प्राणायाम का महत्व को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

**अभ्यास प्रश्न 1**

प्राणायाम के विविध अर्थ व स्वरूप का विस्तृत विवेचन कीजिए।

---

**12.7 सारांश**

---

प्राणायाम का अर्थ प्राण शक्ति का नियमन है। इसका नियमन कर मनुष्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकता है। हठयोग के ग्रन्थों में प्राणायाम के आठ प्रकार बताये गये हैं। किन्तु महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के चार प्रकार बताये हैं। बाह्य वृत्ति प्राणायाम, आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम, स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम, बाह्य आभ्यन्तर विषयाक्षेपी चौथा प्राणायाम है। प्राणायाम के महत्व को स्पष्ट करते महर्षि पतंजलि ने कहा है, कि प्राणायाम से साधक के ज्ञान के ऊपर अज्ञान का जो आवरण है वह हट जाता है तथा ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, धारणा की योग्यता आ जाती है, प्राण वश में हो जाते हैं। धारणा से ध्यान की स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार **इकाई-12 प्राणायाम के विविध अर्थ व स्वरूप का विस्तृत विवेचन** के अन्तर्गत प्राणायाम का अर्थ व स्वरूप, लक्षण, प्रकार एवं महत्व के बारे में अध्ययन किया गया।

## 12.8 शब्दावली

नियमन	—	नियमित करना
पूरक	—	भरना
रेचक	—	खाली करना
कुम्भक	—	भर कर रोपना
बाह्यवृत्ति	—	बाहरी विचार
आभ्यन्तरवृत्ति	—	आन्तरिक श्वास
स्तम्भवृत्ति	—	प्राण को जहाँ का तहाँ रोक देना।

## 12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीरशास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातञ्जल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पन्त्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

## 12.10 बोध/अभ्यास प्रश्न के उत्तर

### बोध प्रश्न-1

1. (i) बाह्य (ii) चतुर्थ (iii) शारीरिक
2. (i) प्राण और आयाम से (ii) चार

### बोध प्रश्न-2

1. प्राणायाम शब्द संस्कृत व्याकरण के दो शब्दों से मिलकर बना है, प्राण-आयाम। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक अन् धातु से मानी गई है। प्राण का आशय जीवनी शक्ति तथा आयाम से आशय विस्तार, नियमन या नियंत्रण से है। अर्थात् कहने का आशय यह है कि प्राणायाम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राण पर नियंत्रण कर उसका विस्तार किया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि प्राण का स्वरूप क्या है? प्राण शब्द का अर्थ जीवनी शक्ति के रूप में लिया गया है। प्रश्नोपनिषद के अनुसार 'प्राण की व्याख्या संकल्प के रूप में की गई है।' प्राण सम्पूर्ण सृष्टि का मूल संरक्षक है। अथर्ववेद में प्राण के बारे में कहा गया है—

प्राण पिता है और उसके लिये सारे प्राणी पुत्र की तरह हैं, प्राण सम्पूर्ण सृष्टि के ईश्वर हैं। इस प्रकार प्राण एक ऐसी दिव्य शक्ति है, जिसके कारण इस ब्रह्माण्ड के जड़ व चेतन अपने स्वरूप में दिखाई देती है। यह प्राण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यही ऊर्जा है जो जीवन, संरक्षण व विनाश भी करती है।

2. वाहयवृत्ति प्राणायाम वह है जिसमें श्वास को बाहर नियंत्रित रूप से निकाल कर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव करना होता है, इसे **रेचक** भी कहते हैं। कहने का आशय यह है कि प्राणवायु को शरीर से बाहर निकाल कर रोकना ही वाहय वृत्ति है। साथ ही साथ यह आकलन करना होता है कि प्राण बाहर कहाँ ठहरा है, कितने समय के लिये ठहरा है, और उतने समय में प्राण की गति की स्वाभाविक संख्या क्या है? इसे ही वाहयवृत्ति प्राणायाम कहते हैं। अभ्यास लगातार करते रहने पर यह दीर्घ अर्थात् देर तक रुकने वाला हो जाता है तथा अनायास सिद्ध हो जाता है।

3. योग शास्त्रों में प्राण संचय पर अधिक बल दिया जाता है, तथा आध्यात्म शास्त्र में प्राणायाम की अधिक महत्ता कही गयी है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के महत्त्व के बारे में कहा है कि—‘ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।’ (पातजल योगसूत्र साधनपाद, 2/51) अर्थात् प्राणायाम के द्वारा हमारे ज्ञान के ऊपर जो अज्ञान का आवरण है वह क्षीण हो जाता है। कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार प्रातः काल उदय हुआ सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार प्राणायाम अशुद्धता को हटाता हुआ साधक को शुद्ध कर देता है। महर्षि पतंजलि ने शरीर शुद्धि के साथ ही धारणा की योग्यता प्राणायाम द्वारा प्राप्त होती है, इस पर बल दिया है—‘धारणासु च योग्यता मनसः ।’ (पातजल योगसूत्र साधनपाद, 2/51) अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से धारणा की योग्यता आ जाती है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि प्राणायाम से चित्त निर्मल होता है, ‘प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।’ (पातजल योगसूत्र समाधिपाद, 1/34) अथवा प्राणवायु को बार-बार बाहर निकालने तथा बाहर ही रोकने (कुम्भक) के अभ्यास से भी चित्त निर्मल होता है।

**महर्षि व्यास के अनुसार**—प्राणायाम के अभ्यास से ही योग्यता होती है अथवा प्राण के प्रच्छर्दन और विधारण के द्वारा स्थिति साधित होती है।

**स्वामी हरिहरानन्द के अनुसार**—आध्यात्मिक देश में चित्त का बंधन धारणा कहलाती है। प्राणायाम में निरन्तर आध्यात्मिक देश की भावना करनी पड़ती है।

**हठप्रदीपिका के अनुसार—**

‘चले वाते चलेचित्तं निश्चलं भवेत् ।

योगी स्थणुत्वामाप्नोति ततोवायुं निरोधयेत् ।।’ (2/2)

वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान होता है। तथा वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है, तब योगी को स्थिरता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कहा गया है कि—‘प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।’ (हठप्रदीपिका 2/16) अर्थात् अर्थात् उचित रीति से प्राणायाम करने से सभी रोगों

का नाश होता है। इसमें आगे कहा गया है कि—

‘ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः।

अभूवन्नतकभयात् तस्मात् पवनमभ्यसेत्।।’

(हठप्रदीपिका 2/39)

अर्थात् ब्रह्म आदि देवता भी काल के भय से प्राणायाम के अभ्यास में लगे रहते हैं। इसलिये प्राणायाम का अभ्यास सभी को करना चाहिये। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका महत्व यह है कि इसका अभ्यास नियमित करने से शरीर एवं मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम से हमारा जीवन उत्कृष्ट बन जाता है। प्राणायाम का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार प्राणायाम स्वास्थ्य संवर्द्धन हेतु अति उत्तम अभ्यास माना गया है, जैसा कि अथर्ववेद के प्राणसूक्त में प्राणायाम द्वारा शारीरिक रोग विनाश हेतु प्राणायाम को बताया गया है। वेदों के मन्त्रों में प्राण के लिये ‘औषध’ व ‘भेषजम्’ शब्द का प्रयोग किया गया है।

#### अभ्यास प्रश्न

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।